ऐतिहासिक खराड काव्य

सती सारन्धा

प्रकाशक—

शिवनारायण मिश्र वैद्य

प्रताप पुस्तकालय

कानपुर ।

प्रथम संस्करण

जून १९२५

प्रताप-पुस्तक-माला की २७ वीं पुस्तक

(सचित्र ऐतिहासिक खण्डकाव्य)

लेखक —

भूमिका लेखक,

श्रीयुत प्रेमचन्द

प्रकाशक—

शिवनारायण मिश्र वैद्य

प्रताप पुस्तकालय

कानपुर

प्रथम संस्करण

मूल्य ॥=)
दस आने

चित्र-सूची

समर्पण

श्रीमान्, साहित्य-सेवी, परमोदार,
वंशाभिमानी, खनियाधाना-नरेश श्री राजा
खलकसिंह जू देव बहादुर के करकमलों में
सप्रेम, ससम्मान्य, समर्पित।

प्रिय महोदय !

जिसके कुल की थी पूज्य-बधू सारन्धा रानी।
जिसका चारु-चरित्र नहीं रखता है सानी।
चम्पत चम्पत हुए छोड़ कर कीर्त्ति निशानी।
उसी वंश के आप रत्न हैं, रखते पानी।
कुल-चरित्र-मय-मुद्रिका राजन ! स्वीकृत कीजिये;
देश-प्रेम की ज्योति को भारत में भर दीजिये॥

समर्पक—

"रसिकेन्द्र"

कई महीने हुये 'रसिकेन्द्र' जी के एक पत्र से मुझे ज्ञात हुआ था कि वह मेरी कहानी 'रानी सारंधा' का विषय लेकर एक खण्ड-काव्य की रचना कर रहे हैं। इस समाचार से मुझे जितना आनन्द और गर्व हुआ वह कोई साहित्यसेवीही जान सकता है। पर वास्तव में यह आदर मेरी कहानी का नहीं था। मेरी कहानी कल्पित न थी। वह उस ऐतिहासिक घटना का प्रभाव था जिस पर मेरी कहानी रची गई थी। रानी सारंधा के जीवन में स्वजातीय अभिमान और आत्मगौरव का जितना ऊंचा आदर्श मिलता है उतना कदाचित् राजपूताने की उज्वल विरदावली में भी न मिलेगा। छत्रसाल बुंदेलखंड के इतिहास का सूर्य्य है। चम्पत राय उसके पिता थे। इतिहास में केवल इतनाही लिखा है कि उनको मुग़लसेना के हाथों से बचाने के लिये रानी ने पहले उनके और तब अपने गले पर तलवार चला दी थी। इसी भित्ति पर कल्पना ने 'रानी सारंधा' की सृष्टि की है। आपको यह नाम किसी इतिहास-ग्रन्थ में न मिलेगा।

रसिकेन्द्र जी हिन्दी के सुकवि हैं। उनकी क़लम ने इस कहानी को और भी चमका दिया है। चाहे साहित्य-सोमरस के पिपासु 'सती सारन्धा' से अधिक संतुष्ट न हों— चाशनी गहरी नहीं है—पर हलकी चाशनी के प्रेमियों को फीकेपन की शिकायत न होगी। मैं कविता का मर्मज्ञ नहीं हूं, पर मोहनभोग का मज़ा उठाने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि हमको हलवाई की दूकान का नाम मालूम हो, हम यह जानते हों कि शकर कहां से आई, मेवे कहाँ से आये, सूजी कैसी डाली गई और घी किस भाव से लिया गया। यद्यपि कहानी मेरी रचना है और लेखक को अपनी ही रचना के पढ़ने में कोई कुतूहल नहीं होता पर मैंने इस काव्य को आद्योपान्त पढ़ा और इसमें मुझे नई रचना का आनन्द प्राप्त हुआ, विशेषतः अन्तिम सर्ग को पढ़ कर तो रोंगटे खड़े हो गये।

जब चम्पतराय मुग़ल सेना से घिर जाते हैं साथ के सभी आदमी काम आ जाते हैं, तो वह रानी सारन्धा से कहते हैं—

"चिर-सङ्गिनि हो कभी न टाला तुमने मेरा कहना,
देखो अब विचलित मत होना साहस पर दृढ़ रहना।
अन्तकाल की बात पड़ेगी देवी तुम्हें निभानी,
शीतल कर दो हृदय हमारा दे कटार का पानी।"

× × × × ×

रानी उत्तर देती है—

"हृदयेश्वर ! यह कैसी आज्ञा हृदय कंपाने वाली,
बज्र-हृदय है नहीं, किस तरह फिर यह जावे पाली।
हां, यदि तीक्ष्ण कटारी होगी अधिक रुधिर की प्यासी,
तो अपना जीवन कर सकती अर्पण उसको दासी॥"

× × × × ×

कौन हृदय है जो इन पंक्तियों को पढ़ कर गौरवोन्मत्त न हो जायगा।

तीसरे सर्ग के आरम्भ में प्रकृति-वर्णन कितना चमत्कारमय है:—

× × × × ×

"रात भर करके कुमुदनी पर सुधा की वृष्टि;
फेर कर संयोगियों पर निज कृपा की दृष्टि—
अन्त में निशिनाथ हो निष्प्रभ कला से हीन;
राज्य का कर अन्त नभ में हो गये तल्लीन।"

बीर बाला सारन्धा की वीरता का वर्णन करते हुए कवि की लेखनी से जो पद्य निकले हैं, उन्हें पढ़ कर हमारे सम्मुख रणचण्डी स्वरूपिणी किसी राजपूत-ललना का चित्र खिंच जाता है:—

"जाती थी जिस ओर निकल बिजली सी बाला।
बहने लगता उधर रुधिर का भीषण नाला।
ज्योति-मयी तलवार उगलती थी बस ज्वाला।
शिव-त्रिशूल सा बना हुआ था उसका भाला।

उस देवी के तेज से, झुलस गया रिपु-पक्ष यों—
रवि से अड़ने में जले सम्पाती के पक्ष ज्यों।"

मुझे इस बात को बड़ी खुशी है कि अब हिन्दी में भी कविजन "शृङ्गार" पर अपनी सारी कवित्व-शक्ति का उपयोग नहीं कर रहे हैं। प्रायः नाटकों में तो जातीयता का अच्छा समावेश होने लगा है। बल्कि हाल के ऐतिहासिक नाटक इसी भाव से प्रेरित होकर रचे गये हैं। अब काव्यों की बारी है। "पथिक" ने पथ दिखा दिया है। हमें आशा है कि भविष्य में रसिकेन्द्र जी के और भी कितने ही अनुगामी निकलेंगे।

श्री काशी.]　　　　　　प्रेमचन्द।

दो शब्द

मेरे इस काव्य का आधार श्रीयुत प्रेमचन्द्र जी की रानी-सारन्धा" नामक प्रसिद्ध गल्प है । वीर बुन्देलखंड की इसी घटना को मैं आपके सामने इस रूप में रख रहा हूं।

प्रस्तुत काव्य की घटनाओं में दो एक जगह थोड़ा सा उलटफेर कर दिया है, जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से कर देना आवश्यक था । गल्प में चम्पतराय को ओड़छा का राजा कहा गया है, लेकिन वंशवृक्ष को देखने से पता चलता है कि चम्पतराय की राजधानी महेबा थी, ओड़छा नहीं । हां, चम्पतराय ने ओड़छा राज्य की रक्षा के लिये लड़ाइयां ज़रूर लड़ी हैं। जब कि ओड़छे के राजा जुझारसिंह की मृत्यु हो गई थी, तब देवीसिंह नामक कोई व्यक्ति शाही फौज को चढ़ा लाया और उसकी मदद से ओड़छा का खुद मालिक बन गया । किन्तु बुन्देलों ने उसकी आधीनता स्वीकार न की, तब बादशाह ने छः साल तक 'इसलामाबाद' नाम रख कर उसे अपने अधिकार में रक्खा । इस बीच में चम्पतराय ओड़छे की ओर से बराबर लड़ते रहे और गद्दी पर पृथ्वीसिंह को। जो कि जुझारु सिंह का अल्पवयस्क बालक था, बैठाले रहे।

उस समय ओड़छा एक प्रकार से चम्पतराय के ही अधिकार में रहा। मान-रक्षा के लिए अधिकांश बुन्देलों ने भी चम्पतराय का साथ दिया। आखिरकार जब बराबर झगड़ा ही बढ़ता हुआ देखा तब बादशाह ने पहाड़सिंह को ओड़छे का अधिकारी बना दिया, जिसे चम्पतराय ने भी स्वीकार कर लिया और व्यर्थ के रक्तपात से हाथ खींच लिया। परन्तु पीछे से पहाड़सिंह ने इनका उपकार भूल कर दुर्व्यवहार करना प्रारम्भ किया। यहां तक कि वह चम्पतराय के प्राण लेने पर उतारू होगया। एक प्रकार से चम्पत के प्राण जा ही चुके थे, परन्तु चम्पत के एक नज़दीकी भाई ने जिसका नाम भीष्म था, इनको दी हुई ज़हर मिली वस्तु को स्वयं खाकर चम्पतराय के प्राण बचा लिये। इन्हीं हरकतों से तंग आकर चम्पतराय शाही दरबार में पहुंच गये और जागीरदारी पाकर वहीं रहने लगे। अस्तु हमने भी चम्पत की राजधानी महेवा कह दी है। दूसरा परिवर्तन 'जैरस गढ़' के क़िले के सम्बन्ध में है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि बुन्देलखण्ड में कोई क़िला इस नाम का नहीं है। हां, 'एरछ' का क़िला जरूर है, उसीका ज़िक्र फारसी इतिहास में भी है। बहुत सम्भव है कि फारसी में बड़ी "हे" (ح) से लिखे जाने के कारण 'जीम' (ج) के धोखे में 'जैरछ' या 'जैरस' समझ लिया हो। अस्तु

हमने भी एरछ ही लिखा है। इस क़िले को चम्पतराय ने जीत कर अपने अधिकार में करके अपना मुख्य निवास-स्थान बना लिया था।

इस काव्य की भूमिका हिन्दी संसार के सुपरिचित लेखक श्रीयुत प्रेमचन्द जी ने लिखने की कृपा की है, तदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूं। इस पुस्तक की घटनाओं और सलाहों के लिये 'न्याय' एवं 'स्टेट्स' के सम्पादक पंडित रामेश्वरप्रसाद शर्मा, 'भारतीय लोकमत' सम्पादक श्री० वृजविहारी मेहरोत्रा और पं० शिवनारायण मिश्र का हृदय से कृतज्ञ हूं। पुस्तक को चित्रित करने का समस्त श्रेय हिन्दी नवरत्न के प्रसिद्ध चित्रकार पं० गणेशराम मिश्र को है।

कवि-कुटीर
कालपी
रामनवमी
१९८१ वि०

विनीत—

रसिकेन्द्र

भूल संशोधन

प्रेस की असावधानी से कुछ गलतियां रह गई हैं, पाठकगण नीचे के अनुसार सुधार कर पढ़ने की कृपा करें)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध (जो छपा है)		शुद्ध (जो होना चाहिए
समर्पण	१	जिसके	...	जिस
१८	७	"है ठीक	...	"ठीक
४५	२	भवन	...	यवन
४७	६	चिन्ता में	...	चिन्तायें
४७	१५	आयोजन	...	आयोजन कर
४८	१८	अधुरो	...	अधूरी
५१	१७	सभ	...	सभी
५७	१	जायगा	...	जायेगा।
"	२	छायगा	...	छायेगा।
"	१२	(आदि अन्त में कामा नहीं है)		(दोनों ओर कामा चाहिए)
६५	२	समर का	...	समर को
"	५	प्राणा	...	प्राणों
६६	४	हमारा	...	सहारा
"	११	देवो।	...	रानो।
७०	६	को उन पर छिड़क रहे हो।		क्यों उन पर डाल रहे हो
७२	५	रहा जक खाकर		रह गया जक कर
"	६	छवि छाकर	...	छवि छक कर
७३	१०	वीर सुतो	...	"वीर सुतो,
७४	८	कायर सपूत	...	कायर कपूत
७५	१२	हटाये	...	कटाये!
"	१५	हिखावे	...	दिखावें।

देश अभिमानी वीर भागतं श्रों पीठ जब—
आशा मातृ-भूमि हाय, किसकी [illegible]गी तब।?

पृष्ठ ५।
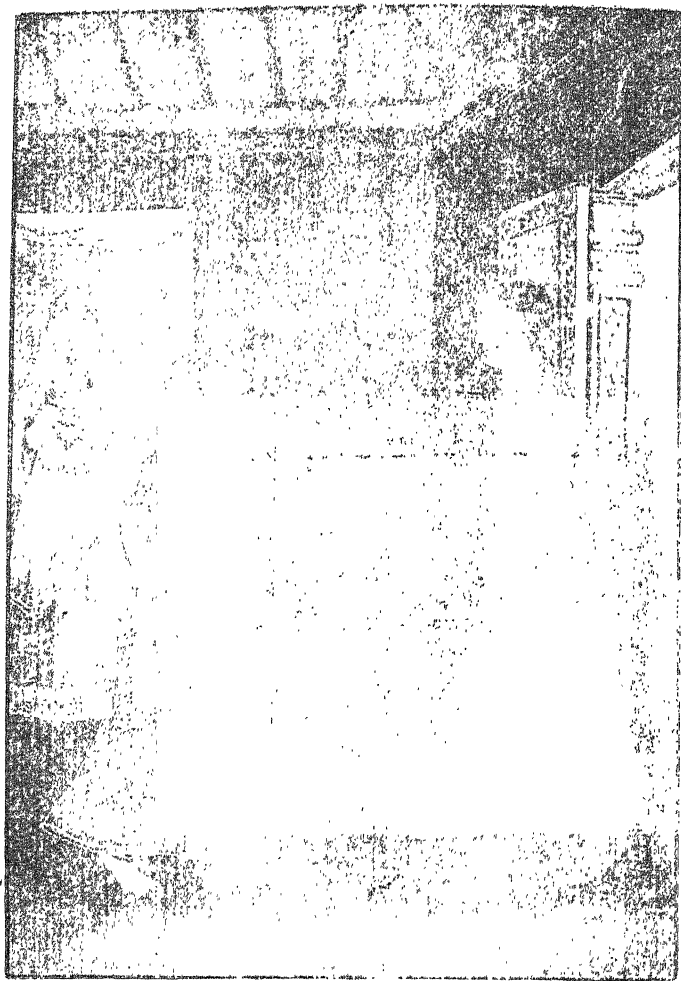
* श्रीहरिः *

सती-सारन्धा

खण्ड-काव्य ।

प्रथम सर्ग

पूज्य जग-मातरम्, महान छवि-धारिणी;
सु-जल, सु-फल पूर्ण, श्यामला, विहारिणी।
नित्य ही उदार-मना पूर्ण स्वार्थ-त्यागिनी;
अंचल में पुत्रों को ले गाती प्रेम-रागिनी।

अन्न, फल, फूल, रत्न आदि दान करती जो—
पोड़ा हृदयान्तर की पुत्रों की है हरती जो,—
शक्तिमयी भारती की भक्ति मढ़ लीजिए।
पाठको! स्व-पूर्वजों की गाथा पढ़ लीजिए॥

× × × × .. ×

हे हरि! बुन्देल-खंड आज क्या बना है वही!
कलकल--निनाद से 'धसान' थी जहां बही।
जिसके किनारे उच्च टीले पर एक किला,—
(भारत के शत्रु भी न जिसको सके थे हिला)—

रक्षित था, एक वरवीर की कृपाण तले,—
जिसने गुमान कई बार शत्रुओं के दले।
नाम अनिरुद्ध सिंह वीरता का क्षत्र था;
भारत का भासमान शोभित नक्षत्र था।

मुग़लों की वक्र-दृष्टि यद्यपि सदा हो रही;
किन्तु, उस वीर ने न नीति दासता की गही।
सामना सदा ही बल, विक्रम से करता था;
शाह की तुमुल--सैन्य देख के न डरता था।

नींद शान्ति, सुख की न सोया कभी चैन से;
एक भाँति शत्रुता थी वीर और रैन से।
सुन्दर 'सौभाग्य-रात्रि' वन ही में गत हुई;
नव-वधू शीतला की आशा-लता नत हुई।

प्रेम नव-भामिनी का उसको न खींच सका;
केवल उद्धार निज जन्म-भूमि ही का तका।
सच है, जिसे है ध्यान, मान निज देश का;
चाहक न हो सकता मोहिनी के वेश का।

तीन वर्ष बीत गये योंही उस वीर को;
खो न सका भली भाँति प्रेयसी की पीर को।
आओ, चल पाठको! विलोकें उस वाम को;
काट रही गिन के जो दुखमय याम को।

नैश्य-नभ ताने हुए तम का वितान है;
शशि--हीन तारों का प्रकाश भासमान है।
सकल दिशायें साँय साँय शब्द कर रहीं;
आधी रात्रि-आगम का भाव मानों भर रहीं।

ऐसे समय में है जो वियोगिनी व्यथा-भरी;
(डगमग डोल रही बीच-धार में, ज्यों तरी)
उसकी विकलता को कैसे लिखे लेखनी!
आपको क्या वाचको! है दुःखदशा देखनी?

देखो, बार बार वह करवटें ले रही;
आहभरी साँसें रजनी को दान दे रही।
शय्या उसे शूल-तुल्य ज्ञात आज हो रही;
नीचे पैर धरते ही काटती सी है मही।

काम की कमान का निशाना बाम है बनी;
पावस की ऋतु हाय उसे वाम है बनी।
कभी मुख दीपक की ओर फेर लेती है;
याद किसी ज्योतिकी दृगोंको घेर लेती है।

आहट पा, चौंक चौंक आशा उमगाती है;
किन्तु, हो हताश अश्रु धार बरसाती है।
पास ही सारन्धा सती बैठी धैर्य्य दे रही;
जिसके प्रताप से हां, गौरवित है मही।

अनुजा 'अनिरुद्ध' की है, ननद है वाम की;
सच्ची वीर-सुता शोभा क्षत्रिय के धाम की।
चित्त बहलाने को सुनाती है अनेकों कथा;
किन्तु, 'शीतला' को हाय! और बढ़ती है व्यथा।

सहसा किवाड़ों में सुनाई पड़ा खटका;
जाकर वियोगिनी का चित्त वहीं अटका।
परिचित--कण्ठ ने न स्थिर रहने दिया;
शीघ्रता से खोल पट आगन्तुक को लिया।

भींगे हुए वस्त्रों से शरीर को कँपाता हुआ;
दीख पड़ा एक युवा व्याकुल सा आता हुआ।
दशा देख उत्सुक हो पूँछा अनुजा ने तभी;
"भैय्या! इस भांति कहो आये हो कहांसे अभी!

भींगे हुए वस्त्र हैं, त्यों चित्त भी उदास है;
हृदय में जमा हुआ जच रहा त्रास है"?
"बहिन! कहूं क्या, हा! अभाग्य दुःख दे रहा;
बदला कहां का जानें क्रूर-काल ले रहा।

किसी भाँति तैर कर आया हूं नदी अभी"।
"अस्त्र, शस्त्र, साथी आदि भैया! क्या हुए सभी?"
"छिन गये अस्त्र, शस्त्र काम आये साथी सब;"
"ईश्वर ने कुशल की" कहा शीतला ने तब।

भौहें किन्तु सारन्धा की ऊपर को चढ़ गईं,
आँखें क्रोध--घृणा-पूर्ण भावना से मढ़ गईं,
आनन भी लाल हुआ वंश-अभिमान से;
बोली तब रोषभरी वाणी बड़ी शान से।

"भैय्या! हाय, तुमने है काम यह क्या किया?
कुल--अभिमान और गौरव गंवाँ दिया!
वीर राजपूत के न योग्य यह काम है;
भीरुता ने वीरता को किया बदनाम है।

आई हा! न लाज तुम्हें शस्त्र छिनवाते हुए!
कुछ भी न ग्लानि हुई भाग कर आते हुए!
छिः छिः! तुच्छ प्राणों का ही ऐसा मोह आ गया;
जिससे कि क्षत्रियत्व, साहस बिला गया।

देश अभिमानी वीर भागते यों पीछे जब—
आशा मातृ--भूमि हाय, किसकी करेगी तब?"
वीर-भगिनी की सत्य--युक्ति ऐसी सुनकर;
मर्माहत हो के बोला वीर शीश धुन कर।

"सचमुच हा बहिन ! बड़ी भूल हो गई;
उस काल मेरी बुद्धि जानें कहां खो गई ।
वीर साथियों ने प्राण युद्ध-भूमि में दिये;
और वैरियों ने अस्त्र मेरे धोखे से लिये ।

हत--ज्ञान हो गया, न सूझ कुछ भी पड़ा;
मेरे चारों ओर अन्धकार ही सा आ अड़ा ।
उसी क्षण प्रेम ने भी हाय ! मुझको छला;
बहिन ! मैं सीधा घर ही की ओर को चला ।

अधम कपूत मातृ-भूमि का कहाया हाय !
माता क्षत्रियाणी के सु-दुग्ध को लजाया हाय !
धन्य हो बहिन ! आज मुझको जगा दिया;
मार्गभ्रष्ट-बान्धव को राह में लगा दिया

जन्म-भर भूलेगी न शिक्षा ये तुम्हारी मुझे;
तुम सी सहोदरा पा गर्व हुआ भारी मुझे ।
कीजे भगिनी क्षमा, न भूल होगी अब कभी;
जाता हूं मै परिशोध लेने रिपुओं से अभी" ।

यों कह के, वीर उन्हीं पावों पीछे लौट पड़ा;
शीतला के हृदय में पहुंचा आघात बड़ा ।
"सुनो, नाथ ! सुनो, श्रम थोड़ा तो निवार लो;
दुःखिनी अभागिनी की प्रार्थना स्वीकार लो" ।

कौन सुनता है ? हुई निष्फल समस्त क्रिया;
पीछे २ प्रीतम के दौड़ी बावली हो प्रिया।
पार हो नदी की धार वीर तो गया चला;
और इस तीर खड़ी रह गई शीतला।

अन्धकार--पारावार उमड़ा हुआ था घना;
डूब गई अबला की सारी बुद्धि चेतना।
हो के निरुपाय बैठ गई शिला-खण्ड पर;
और हत--चेत रही बाला एक दण्ड भर।

सारन्धा भी आई वहीं खोज करती हुई;
पाया शीतला को ठंडी सांसें भरती हुई।
जिसने आशा की कली शुष्क की तुषार डाल;
देख उसे सामने न क्रोध को सकी सम्हाल।

नागिन सी बल खा के बोली तब शीतला,
"सत्य ही मर्याद तुम्हें ऐसी प्रिय है भला ?"
बोली तब सारन्धा "मर्यादा मुझे प्यारी है,
केवल मुझे ही नहीं, जग-हितकारी है।

जिसको मर्याद का न होता कुछ ध्यान है,—
जीवन अवश्य वह पशु के समान है"।
कहा शीतला ने 'अभी बातें जो बनातीं तुम;
होता पति अपना तो ज्ञान भूल जातीं तुम।

हृदय और डोली में छिपातीं होशियारी से !"
"नहीं, नहीं, लेती काम तत्क्षण ही कटारी से;
आवेगा समय तो मैं सत्यता दिखाऊंगी;
प्राण दूंगी, किन्तु लाज कुल की बचाऊंगी"।

यों ही, वाक्य--वाणों का प्रहार जब हो चुका;
हृदय के मैल का विकार जब धो चुका।
लौट आईं दोनों पुनः अपने सदन को;
कुढ़ कर शीतला भी ैठी मार मन को।

वहां, उस वीर ने जा बड़े ही उछाह से;
रिपुओं को व्यस्त किया वीरता प्रवाह से।
तीन मास साहस के साथ किया सामना;
अन्त में सफल हुई सारी मन-कामना।

आया 'महरौनी', दुर्ग वीर के ही हाथ में;
लौट आया घर को ले विजय को साथ में।
दम्पति का हर्ष, सुख, शान्ति से मिलाप हुआ;
दूर दुख-ताप हुआ, उदित प्रताप हुआ।

इधर सारन्धा का भी हृदय-कमल खिला;
जैसा वह चाहती थी वैसा वर उसे मिला।
मुकुट बुँदेलों का था राजपूत नर था;
'चम्पत' था नाम, महेवा का भूप वर था।

बैठते ही गद्दी पर प्रजा, वश कर ली;
न्याय-पूर्ण शासन की नीति उर धर ली।

मुग़लों को कर देना बन्द उसने किया;
असिके प्रताप से स्वराज्य को बढ़ा लिया।

सैन्य यवनों की कई बार हार पीछे भगी;
ज्योति विजय--श्री की बुन्देलखण्ड में जगी।

सुन के अपूर्व कीर्ति यश की कथा अपार;
बहिन के योग्य ही सु-पात्र मन में विचार।

वीर अनिरुद्ध ने प्रबन्ध शीघ्र कर दिया;
कर कञ्ज सारन्धा का चम्पत ने गह लिया।

जोड़ी सिंह सिंहिनी की शोभित हुई नई;
विमल गुणों की कीर्ति नगर में छा गई।

अन्य रानियां थीं और रनिवास में सही,—
किन्तु, श्रेष्ठ प्रेम-पात्री भूप की बनी यही।

पावन, अटूट प्रेम-पूरित विवेक था;
यद्यपि शरीर दो थे, किन्तु मन एक था।

रक्खे हुए श्रद्धा, भक्ति पूज्य हृदयेश में;
शोभित सारन्धा हुई सती के हो वेश में।

द्वितीय सर्ग

ज्यों पारावार अथाह सदा बहता है;
विधि-चक्र निरन्तर त्यों चलता रहता है।
यदि समय एक ही सा सदैव ही जाये;
तो फिर परिवर्तन शब्द कहां छवि छाये।

है नियम प्रकृति का यही पलटते जाना,
गढ़ कर बिगाड़ना, बिगड़ा पुनः बनाना।
यह नीति ओड़छे में भी ठीक समाई;
होनी ने मति-गति चम्पत की पलटाई।

दिल्लीपति ने जो इच्छित चक्र चलाया;
उसके फन्दे में चम्पत भी फँस आया।
देकर 'पहाड़' को भार राज्य का सारा;
सारन्धा युत दिल्ली की ओर सिधारा।

सम्मान शाह ने भली भाँति दिखलाया;
नर--वीर शेर को लालच दे अपनाया।
तहसील 'कालपी' की जागीर लगाई;
नौ लाख साल की आमदनी बतलाई।

आर्थिक-तापों में चम्पत भी ताया था;
निज राज्य छोड़कर इसीलिए आया था।
पाकर मनमानी सिद्धि, स्व-भाग्य सराहा;
यद्यपि बदले में की स्वतंत्रता स्वाहा!

दासत्व-पाश में यदि न वीर बँध जाता;
बुन्देलखण्ड को राहु न यों ग्रस पाता।
अतएव, शान्ति, सुख से दिन लगा बिताने;
कर के आमोद प्रमोद चित्त बहलाने।

जब सारन्धा ने सुनी कथा यह सारी;
हो गई हृदय में उसे वेदना भारी।
जो मूर्ति प्रेम की समा रही थी मन में;
खिसकी हृदयासन से नीचे को क्षण में।

ऐश्वर्य्य देख कर वह दूना दुख पाती;
रूखी सी रहकर अपना समय बिताती।
दिन बीत गये कुछ योंही उसको रहते;
अभिमानिनि को निज मनस्ताप में दहते।

चम्पत ने देखा भाव प्रिया का रूखा,
शंका से माथा ठनका, मुख कुछ सूखा।
पूछा,---"सारन! है यह क्या हाल तुम्हारा,
कर रहा हर्ष क्यों तुम से यहां किनारा!

दिन २ क्यों कोमल वदन कहो कुम्हलाता,
वह प्रेम-भाव भी प्रकट न अब दिखलाता ।
जब से आई हो यहां कहो तो प्यारी—
हँस कर पगड़ी भी तुमने कभी सुधारी ।

कर के मृदु प्रेमालाप न पान खिलाया;
वस्त्रादि शस्त्र से मुझको नहीं सजाया ।
यह परिवर्तन क्यों हुआ ? प्रिये ! बतलाओ;
सच २ कहदो सब कारण अब न छिपाओ ।"

"क्या कहूं प्राणपति ! कंठ नहीं खुलता है;
दब रहा बोझ से हृदय नहीं डुलता है ।
मैं बहुत चाहती हूं कि प्रमोद बढ़ाऊं;
क्या करूं किन्तु, मन को कैसे समझाऊं ।"

बोला चम्पत फिर चढ़ा त्यौरियां तत्क्षण,
"है हृदय तुम्हारा सचमुच एक विलक्षण !
दब गया, पड़ा क्या बोझ बताओ भारी,
जो उदासीनता तुम्हें आ गई प्यारी !

जगदीश-कृपा से आज सकल सुख छाये;
जो कभी ओड़छे में न शान्ति से पाये ।"
बोली सारन्धा किये लाल मुख अपना;
"हो गये ओड़छा के सुख मुझको सपना ।

सच कहो नाथ ! इस सुख को तोल लिया है;
कितने महँगे दामों में मोल लिया है ।

पृ० १२

थी वहां एक राजा की रानी खासी;
हूं यहां एक जागीरदार की दासी !
हो आज उसी को अपना शीश झुकाते;
जिसको गौरव से रहे सदा ठुकराते !

सुन नाम आपका हरदम थर्राता था;
कर याद वीरता चैन नहीं पाता था।
हा ! उसी शाह ने आज गुलाम बनाया;
स्वच्छन्द--केहरी को बन्धन पहिनाया ।

क्या हुआ कठघरा जो सुवर्ण का पाया;
पड़ रही दासता की तो उस पर छाया।
सच कहो नाथ ! इस सुख को तोल लिया है;
कितने महँगे दामों में मोल लिया है ।

चढ़ जाये जिस पर सौख्य--सम्पदा सारी;—
है गई हाथ से वह स्वतन्त्रता प्यारी ।
सोचो सोचो, प्राणेश ! करो ऊंचा मुख;
क्या इसको ही हो समझ रहे सच्चा सुख !"

सुन कर सारन्धा की यह समुचित वाणी;
आत्माभिमान से लगा झूमने मानी ।
आंखों के आगे से हट गया अंधेरा;
वीरत्व--छटा ने किया हृदय में डेरा ।

थाभटक रहा, वह आया चित्त ठिकाने;
अपनी भूलों पर लगा वीर पछताने ।
"सचमुच ही प्यारी ! भ्रम में पड़ा हुआ था;
छाती पर भारी पत्थर अड़ा हुआ था ।

जीवन-नौका दासत्व-भँवर में मेरी;
थी फँसी हुई भावी कष्टों की घेरी ।
बन कर्णधार तुम ने ही पार लगाया;
सौभाग्य सूर्य्य को फिर तुमने चमकाया ।

बस, लात मार कर आज दासता पर मैं;
अपनाऊंगा वह अपना छोटा घर मैं ।
जो रहे कलपता हृदय प्राणप्यारी का;
धिक्कार योग्य जीवन नर-तनधारी का ।
जिसमें तुमको सुख मिले वही है करना;
आयें संकट तो उन से भी क्या डरना !
है आज तुम्हें मैंने सब विधि पहिचाना;
हां, मूल्य तुम्हारे उच्च-हृदय का जाना ।
हा ! प्रिये ! हृदय जल रहा ताप से मेरा;
होगा कैसे उद्धार पाप से मेरा ।"
वह वीर लगा खेदित होकर फिर रोने;
अपने कलंक को अश्रु धार से धोने ।

सारन्धा ने आश्वासन दे समझाया;
पोंछे आंसू प्रमुदित हो हृदय लगाया।
"जीवनधन! चिन्ता तजो न खेद बढ़ाओ;
जो हुआ, हो चुका उसकी याद भुलाओ।

जब ग्लानि हुई तब पाप आप कट जाते;
साहसी मनुज के संकट ज्यों घट जाते।
अब करो राज्य को कूंच न देर लगाओ;
निज मातृभूमि का सत्वर हृदय जुड़ाओ।

वह, देख आपको पड़ा दास्य--बन्धन में;—
है कलप रही, चल धीर बँधाओ मन में।"
बस, उक्ति प्रिया की उसने मन में धारी;
तत्काल छोड़ कर जागीरी सुखकारी।

वह वीर, राज्य में अपने वापस आया;
निज जन्म-भूमि के पद पर शीश झुकाया।
विधि-चक्र-नियम से काम सभी हैं होते;
फिर भाग्य जगे बुन्देलखण्ड के सोते।

"एरछगढ़" ने फिर गई हुई श्री पाई;
सारन्धा की हो गई सभी मन भाई।
सानन्द शान्ति से लगे दम्पती रहने;
वह पूर्ण-प्रेम का स्रोत लगा फिर बहने।

इस भाँति मास कुछ सुख से बीत गये जब;
दुर्दैव-काल ने चक्र चलाया फिर तब।

दिल्ली ने अपनी काया पलटी सत्वर;
बीमार पड़ा जब शाहजहाँ शय्या पर।

चारों दिशि से विद्वेष-वह्नि थी धधकी;
औरंगज़ेब ने निज चालों की हद की।

मिल कर 'मुराद' से अपना काम बनाया;
पूरे दल बल से सज कर कूँच कराया।

दाराशिकोह को भी थीं ख़बरें सबकी;
चलता था वह भी चालें निजमतलब की।

था इष्ट भाइयों से निष्कंटक होना;
कब उसे ज्ञात था अपना ही सिर खोना।

औरंगज़ेब की शान, शक्ति हरने को,
भेजी भारी सेना स्वागत करने को।

इस ओर शाहज़ादे दोनों बेखटके;
चल कर दक्खिन से चम्बल तट पर अटके।

रुक गई वहीं गति संकट सन्मुख आया;
देखा कि शाह का दल है गुरुतर छाया।

बहती थी नदी अथाह कठिन था तरना;
यदि वहीं रहें तो कष्ट पड़ेगा भरना।

असहाय शाहज़ादों ने युक्ति चलाई;
निज दीन विनय चम्पत के पास पठाई ।
"नृप-मुकुट ! न दोगे जो इस समय सहारा;
तो मुश्किल समझो बचना आप हमारा ।
दारा--शिकोह की बड़ी फ़ौज ने घेरा;
है पड़ी हमारे पीछे डाले डेरा ।
घिर गये, न कोई बचत नज़र आती है;
बस याद आपकी आशा अटकाती है ।
दीनों की सुन कर विनय न देर लगाओ;
आओ, आओ, हमको ले शरण, बचाओ ।"
इस भाँति संदेशा जब चम्पत ने पाया;
जाकर सारन्धा से सब हाल सुनाया ।
"क्या करूँ प्रिये ! कुछ नहीं समझ में आता;
यह नया धर्म-संकट आया दिखलाता ।"
"हे नाथ ! सोच तज उन्हें सहारा दीजे;
आश्रय-प्रार्थी को शीघ्र शरण में लीजे ।"
बोला चम्पत—"है इस से कठिन उबरना;
आफ़तें बुलाना है सहायता करना ।
दारा--शिकोह के साथ शत्रुता होना;
व्यर्थ ही स्वयं है सैन्य-शक्ति का खोना ।

फिर अपने को क्या उनसे ग़रज़ पड़ी है ?
ऐसी मुराद से क्या मित्रता बड़ी है।
यों तो हैं दोनों मेरे लिये बराबर;
हैं शत्रु-विधर्मी आर्य्य--राज्य के तस्कर।

यदि, भाई २ मिले, विरोध विसारा—
तो फिर बोलो, है किसका हमें सहारा ?"
बोली सारन्धा, "है ठीक आपका कहना—
करना सहायता है दुख-नद में बहना।

पर, आर्य्य-धर्म क्या कहता है, सुन लीजे;
जो आये अपनी शरण उसे सुख दीजे।
हैं पूर्वज देते रहे इसी का परिचय;
अब तक भी जिनकी कीर्ति न हो पाई क्षय।

'शिव' नृप को 'पारावत' से था क्या मतलब।
पर, धर्म-हेतु दे दिया दान में तन सब।
त्योंही 'सुरेन्द्र' को देख शरण में आया;
ऋषि 'दधीचि' ने हड्डियाँ सौंप सुख पाया।

रघुपति ने दैत्य विभीषण को अपनाया;
ले उसे शरण में लंकाधिपति बनाया।
क्या पढ़ा आप ने है कृष्णार्जुन का रण;
आश्रित की रक्षा करना ही था कारण।

जब चित्रसेन गन्धर्व शरण में आया;
दे अभय-दान अर्जुन ने युद्ध मचाया ।
रण किन से? उनसे जो कि मित्र थे भारी;
रक्षक, जगदीश्वर, और सदा हितकारी ।
कर दिया धर्म ने विवश पार्थ को तत्क्षण;
फिर रण भी भीषण हुआ रख लिया निज प्रण !
दे रहे शास्त्र दृष्टान्त अनेकों ऐसे;
फिर आप धर्म से विमुख बनोगे कैसे?
यह प्रश्न स्वार्थ का नहीं धर्म ही का है;
जो आर्य्य-भाल के लिए सुयश टीका है।"
फिर भी चम्पत ने कहा—"सोच लो प्यारी;
है भासित होती इसमें हानि हमारी ।
जय में भी हमको दीख रहा संशय है,
निज सैन्य कटेगी व्यर्थ बड़ा ही भय है।"
बोली सारन्धा—"भय से क्या डरना है,
यह व्यर्थ नहीं है धर्म-हेतु मरना है।
सब वीर हमारा साथ धर्म-हित देंगे;
निज रक्त बहा कर नाम अमर कर लेंगे।
निश्चय जय होगी नई शक्ति आयेगी;
सद्धर्म-ध्वजा चम्बल पर फहरायेगी ।

चमकेगा बन कर 'लाल' 'रक्त' वीरों का;
होगा वीरत्व-विकास आर्य-हीरों का।
बस, समय न बातों में अब और बिताओ;
दे अभयदान आश्रित-जन को अपनाओ।
जाओ, जाओ, प्राणेश समर को जाओ;
कर्तव्य पाल कर सच्चे वीर कहाओ।"
थी युक्ति अकाट्य विशेष, न काट सका जब;
स्वीकृत चम्पत ने किया प्रिया का मत सब।
आश्वासन देकर दूत अस्तु पहुंचाया;
इस ओर समर करने का साज सजाया।

तृतीय सर्ग

रात भर कर के कुमुदिनी पर सुधा की वृष्टि;
फेर कर संयोगियों पर निज कृपा की दृष्टि ।
अन्त में निशि-नाथ हो निष्प्रभ कला से हीन;
राज्य का कर अन्त नभ में हो गये तल्लीन ।

आ गये इस ओर दिन-नायक स्व-तेज पसार;
विरह-विधुरा कमलिनी का सज गया शृङ्गार ।
निशिचरों के दर्प का मद हो गया सब चूर्ण;
हो गईं नव-ज्योति से सारी दिशायें पूर्ण

ध्यान, पूजन, भजन भक्तों का हुआ आधार;
भक्ति वाली भावनायें भर उठीं झङ्कार ।
मातृ-भू के पुत्र प्यारे छोड़ आलस मन्द;
धरणि के छू चरण करते वन्दना सानन्द—

जन्म-दात्री, जयति धात्री, जननि स्वर्ग समान;
है अथाह प्रवाह सम तेरी दया का दान ।
अन्न, नीर, समीर नूतन नित्य देता शक्ति;
परम पावन रज बढ़ाती, बुद्धि, विद्या, भक्ति ।

पालती, दुख टालती, सञ्चालती मनुजत्व,
छा रहे सर्वत्र हो तेरे महत्तम तत्व ।
उऋण हो सकती नहीं तुझसे कभी सन्तान;
है अधम, चाण्डाल, जो तेरा न करता ध्यान ।
जयति भारत-मातरम् ! प्रणमामि वारंबार,
कर सदा कल्याण सौख्य प्रदान, कष्ट निवार ।"
आन्तरिक हृद्धाम से निकले हुए उद्‌गार;
जननि भी स्वीकार करके हो रही बलिहार ।
फूल, फल आदिक अनूठे दे नये उपहार;
कर रही वात्सल्य-रस का पूर्णतः सञ्चार ।
जो पड़े भ्रमजाल में भूले जननि का ध्यान;
जननि उनपर भी दया करती सदैव समान ।
धन्य है माँ का हृदय, है धन्य प्रेम-विकास;
विहँगगण भी इसी ध्वनि का भर रहे प्रतिभास ।
आप भी प्रिय पाठको ! सच्चे हृदय के साथ;
'वन्दनीया मातरम्' कह जोड़ लीजे हाथ !
देखिये, इस शान्ति-दायक समय में किस भाँति;
है भली मालूम होती सैनिकों की पाँति ।
धर्म में हैं पग रहे, है वीरता का ध्यान,
वीर बुन्देले मुदित हो, कर रहे प्रस्थान ।

बज रही भेरी, दिलेरी दे रही भरपूर;
सुन दमामों की धुकारें झूमते हैं शूर।
चूमते कुछ कण्ठ के नव-हार बारंबार;
जो बिदाई में प्रिया से हैं मिले उपहार।

याद करते वचन—"आना हो जयी प्राणेश;
धर्म पर बलिदान होना समझना उद्देश।
मोह में पड़ कर न करना भीरुता के काम;
समर को जाओ, सहायक है हमारा राम।"

सकल सैनिक, पूजनीया विजय-दायिनि मान;
मुदित हो सिर से लगाते बार बार कृपाण।
अश्व भी उन्मत्त हो कर हींस कर हर वार;
वीर-प्रभु की कर रहे उत्साह-वृद्धि अपार।

अन्त में 'एरछ' किले से एक अश्वसवार:—
वीर-रस से छकित हो पहुँचा महल के द्वार।
सती सारन्धा खड़ी थी लिए सज्जित थाल;
विजय का बीड़ा दिया, डाली गले में माल।

"प्राणपति वीरेश! जाओ वीरता के साथ;
है बुँदेलों की सतत लज्जा तुम्हारे हाथ।
धर्म का नायक सहायक हो वही विश्वेश;
आपकी असि को बना दे इन्द्र-वज्र विशेष।

धर्म को रख ध्यान में लाँघो विजय-सोपान;
देखना, आश्रित तुम्हारे हो न पावें म्लान।"
वीर चम्पत ने लिया सादर प्रिया से पान;
चूम कर फिर कर मनोहर कर दिया प्रस्थान।

* * * * *

घन-घटाओं सी घुमड़ती वाहिनी बढ़ती चली;
पहुंच चम्बल के किनारे छवि-छटा छाई भली।
तृषित, मरणासन्न जल पाकर मुदित होता यथा;
डूबते जन को सहारा एक तृण का है तथा,—
शाहज़ादों की खुशी का कुछ न पारावार था;
दुख, निराशामय हृदय सुखका बना आगार था।
सान्त्वना दे, वीर चम्पत ने व्यवस्था की नई;
उचित संकेत-स्थलों पर सकल सेना छिप गई।
गुप्त प्रकटित मार्ग परिचित थे बुँदेलों के सभी;
कुशलता पूर्वक उन्हीं पर डट गये क्रमशः सभी।
शाहज़ादों के सहित बिखरी हुई सेना लिये;
वीर चम्पत शीघ्र पहुँचा युद्ध करने के लिये।
फ़ौज दारा की उधर जब समर करने को डटी;
युक्ति चम्पत की चली सेना इधर तिर्छी हटी।

निडर होकर पास घोड़े के गई साहसमयी;
रह गया निस्तब्ध सा 'हय' देखकर प्रतिभा नई।

पृ० २७

बुद्धि, बल, चातुर्य्य पूर्वक युद्ध करके वीर वर;
शाहज़ादों के सहित पहुँचा सुरक्षित तीर पर ।
कुपित दारा के सिपाही क्षुब्ध हो पीछे पड़े;
घेर कर चारों तरफ से खूब ही डट कर लड़े ।

तब, छिपे जो वीर थे, मैदान में वे आ गये;
सात सौ वर वीर मर कर अमर पदवी पा गये ।
राजपूतों पर हुआ संकट उपस्थित तब नया;
वीर चम्पत को पराजय शीघ्र भासित होगया ।

पर, उसी क्षण एक दम पश्चिम दिशा की ओर से;
एक गहरी घन-घटा घुमड़ी बड़े ही ज़ोर से ।
बादलों सा दल निराला आ गया घन-घोष से;
शाह सेना पर अचानक पिल पड़ा नव-रोष से ।

व्यूह टूटा, धैर्य छूटा, सैन्य दारा की भगी;
वीर चम्पत की उड़ी जय की पताका जगमगी ।
देखता था दृश्य ये सब वीर विस्मय में पड़ा;
कौन है ऐसा हितू जो इस समय आकर लड़ा ।

जानने को वृत्त पहुंचा सन्निकट तत्काल ही;
वह सहायक, अश्व से उतरा नवाये भाल ही ।
चरण चम्पत के छुये कर प्रेम से चूमे तभी;
वीर गद्‌गद् हो गया, दृग मुदित हो झूमे तभी ।

ज्योति बिजली की चमक कर हृत्पटल पर आ पड़ी;
और सारन्धा प्रिया को सामने देखा खड़ी।
वीर--वेश विभूषिता उत्साह से फूली हुई;
समर के मद से छकित असि-दोल पर झूली हुई।

वीर-दम्पति के मिलन से पूर्ण घोषित जय हुई;
रक्त-रंजित भूमि रण की भाव सात्विक-मय हुई।
वीर-बाला का निराला तेज जगमग हो गया;
सैनिकों के समरका श्रम एक क्षणमें खो गया।

उल्लसित हो लूट करने के लिये कुछ जुट गये;
थे सिसकते वीर वे कहने लगे, हा! लुट गये।
था बहादुर ख़ाँ बली घायल हुआ मूर्छित पड़ा;
स्वामि-सेवक अश्व उसका पास ही में था खड़ा।

रो रहा था और करता मक्खियों को दूर था;
प्रेम प्रभु पर प्रकट उसका हो रहा भरपूर था।
देख कर यह हाल हय का चकित चम्पत रह गया;
शीघ्र ही आदेश घोषित कर दिया उसने नया।

"जो पकड़ इस अश्व को जीवित यहाँ ले आयगा;
वह सदा सम्मान्य हो, उपहार भारी पायगा।
घोषणा सुन लोभ में सब वीर तब आने लगे;
पास जाते किन्तु सबके प्राण से जाने लगे।

पड़ सका साहस किसी का हाथ धरने का नहीं;
अग्रसर हो शीघ्र सारन्धा बढ़ी आगे वहीं।
निडर होकर पास घोड़े के गई साहसमयी;
रह गया निस्तब्ध सा हय देखकर प्रतिभा नई।

मोहिनी थी दृष्टि उसकी, काम जादू का किया;
अश्व ने सिरको झुका कर गोद्में मुंह रख दिया।
सुन्दरी ने प्रेमपूर्वक हाथ फेरा शीश पर;
और अपने साथ लाकर कर दिया पति की नज़र।

(ज्ञात था किसको कि यह घोड़ा चला यों आयगा ?
और वह ही नाश का कारण कभी बन जायगा।)
अस्तु इस रण में हुआ सब भाँति से चम्पत जयी;
क्यों न होता जब कि पूरी शक्ति उसमें आ गई।

सब तरह से शाहज़ादों को सहारा मिल गया;
आगरा में पहुंचकर फिर हृत्-कमल भी खिल गया।
कुशल आलमगीर ने निज स्वार्थ-साधन के लिए;
कपट, छल, कौशल्य से सब नष्ट कंटक कर दिये।

तख्त पर अधिकार करके शाह खुद ही बन गया;
ठान भी औरंगजेबी शान का फिर ठन गया।
जाल फेंका शीघ्र ही जिसमें फँसा चम्पत बली;
मिष्ट वाणी शाह की थी एक मिश्री की डली।

चख उसे बाँका बुँदेला पूर्ण सुख-रस से छका;
पा अतुल जागीरदारी शाह का आश्रय तका।
पड़ गई फिर दासता की बेड़ियों की शृङ्खला;
हाय रे, धन ! तू छली है, हर किसी को है छला।

चतुर्थ सर्ग

(१)

प्रकृति पहिन कर पट पीला,
लगी देखने नव-लीला ,
नभो-नील की बनी चाँदनी तनी हुई है शोभाधाम,
उसके नीचे कालिन्दी का केलि हो रहा है अभिराम ।

(२)

लहर लहर लहरें लेकर,
आभायें अनुपम देकर ,
छहर रही है निर्मल बन कर हरती हैं सन्ताप विशेष;
टक्कर लेकर प्राचीरों से धारण करती नूतन वेश ।

(३)

दर्शन स्पर्शन करने को,
भव्यभावना भरने को ।'
भावुक भक्ति-भाव में भीगे तज कर अपने सारे काम,
आकर पुण्य नदी यमुना को करते हैं सानन्द प्रणाम ।

(४)

कुछ विनोद ही पाने को--
आते मन बहलाने को,
धन्य आगरा को करता है कल्लोलिनि का प्रवल प्रवाह,
वहाँ पहुंच कर किसे न होगी दर्शन करने की शुभ चाह।

(५)

बालक एक अश्व पर से,
करता है प्रणाम कर से,
छत्रसाल, चम्पत का सुत है, और नहीं है कोई सङ्ग,
सैर कर चुका, लौट रहा है अब घर को हो प्रमुदित अङ्ग।

(६)

बीच शहर में जब आया,—
घिरी संकटों की छाया,
कुछ स-शस्त्र सैनिक मुग़लों ने आकर लिया अचानक घेर,
बालक को कर विवश, अश्व को छीन लिया कुछ लगी न देर

(७)

थे ये कौन ?—लुटेरे थे ?
नहीं, द्रव्य के चेरे थे !
बली बहादुर ख़ाँ के दिल में भड़क रही थी गहरी आग—
(क्योंकि अश्व को गँवा हाथ से घायल हो आया था भाग।)

(८)

पड़ा उसी पर जल, सहसा;
हुई आज शीतल सहसा,
अपने हय पर इस बालक को चढ़ कर आता हुआ विलोक,
सोच सका परिणाम न कुछ भी और क्रोध भी सका न रोक।

(९)

फिर इसको किस का डर था,
अति आतंक शाह पर था,
खुशामदी था, और वीर था, बना हुआ मूंछों का बाल,
खुश रहते थे शाह सदा ही अस्तु न उनका भी था ख़्याल।

(१०)

ज़ोर सिंह से कुछ न चला,
लेकर शावक से बदला,
खुशी मनाता हुआ खूब हो घोड़े पर हो लिया सवार,
रोक टोक के बिना शीघ्र ही पहुंच गया जाकर दरबार।

(११)

उधर, विकल रोदन करता,
मन में आत्म-ग्लानि करता,
छत्रसाल भी पहुंचा जाकर माता सारन्धा के पास,
सारा हाल सुनाया उसने गहरी लेते हुए उसास।

(१२)

सुन कर कथा क्रोध वाली,
आँखों में दौड़ी लाली,
तिरस्कार के स्वर में बोली छत्रसाल को दे धिक्कार,
"हट, आगे से, मुँह मत दिखला अधम पुत्र तू है बेकार।

(१३)

घोड़ा रिपु ने छीन लिया,
पर तू ने कुछ भी न किया,
कैसा क्षत्रिय का तू सुत है? प्राण बचा कर आया भाग!
बता, हृदय कैसा है तेरा, भड़की जो न मान की आग!

(१४)

अश्व छुड़ा कर लाना था,
या कि वहीं मर जाना था,
आज आर्य्य कुल किया कलंकित करके कायरता का काम!
पल भर भी न धीर धरता है, हाय! जला जाता हृद्धाम।

(१५)

बालक समझ क्षमा करदूँ,
नहीं, काट कर सिर धरदूँ।
ऐसे बालक के होने से हो न कभी सकता कल्याण —
जिसे आत्म-अभिमान न प्रिय है, और न गौरव का है ध्यान

अच्छा, मैं सुन चुकी बहुत कुछ अब उत्तर देगी तलवार,
कैसे लेती अपना घोड़ा, निर्णय कर लेगी असि-धार। पृ० ३९

(१६)

कभी सुनी है कीर्त्ति--कथा,
क्या छोटा रघु बाल न था !
जिसने सुरपति का मद मथ कर छीन लिया था यज्ञ--तुरङ्ग,
बालक ही थे राम जिन्होंने किया कठिन शिव का धनु भङ्ग।

(१७)

लव, कुश भी तो बालक थे,
जिनके मुनि हो पालक थे।
फिर , क्या उनसे छीन सका था कोई मख का अश्व गृहीत,
बालक था अभिमन्यु कि जिसने लिया सप्त-रथियों को जीत।"

(१८)

"माता ! हृदय शान्त कीजे,
अधिक न मर्म-व्यथा दीजे,
था निरस्त्र मैं, और अकेला, तिस पर हुआ अचानक वार,
सूझ पड़ा कुछ मार्ग न मुझको किया शत्रुओं ने लाचार।

(१९)

यदि आज्ञा पाऊं माता !
अभी वहीं जाऊं माता !
दे दो मुझको शस्त्र हाथ में दिखलाऊं मैं शक्ति नवीन,
स्वयं मरूं, या उन्हें मार कर अश्व अभी लाता हूं छीन।

(२०)

मरने से न कभी डरता,

बिना शस्त्र पर क्या करता ?

उन कुटिलों को प्रतिफल जाकर अभी अभी मैं दूँगा अम्ब !

हाथ फेर कर, मुख से केवल आज्ञा दे दो बिना विलम्ब ।"

(२१)

छत्रसाल की सुन बानी,

बोली सारन्धा रानी,

"नहीं, तुझे मैं भीरु समझती, इससे मुझे नहीं विश्वास,

बाट देखता जो आज्ञा की उसका होता नहीं विकास ।

(२२)

अस्तु, न भेजूँगी तुझको,

यही उचित जचता मुझको,

अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर मैं ही जाती हूं तत्काल,

अपना अश्व बाहु के बल से अभी छीन लाती हूं हाल ।"

(२३)

"माता" "बस, चुप बोल न अब,

हीन गिरा को खोल न अब ,"

यों कह भरी रोष में बाला वीर-वेशिनी बनी कराल,

मुण्ड-मालिनी रण-चण्डी को मानो प्रकटी मूर्ति विशाल ।

(२४)

कुछ वर वीर साथ लेकर,
उत्तेजन उनको देकर,
जहां भरा दरबार शाह का वहीं उपस्थित हुई तुरन्त,
सभी चकित हो लगे देखने क्रोध भरा आनन द्युतिवन्त।

(२५)

क्षत्रियत्व का परिचय था,
बहुतों के दिल में भय था,
क्योंकि अमर आदिक वीरों की कृतियाँ देख चुके थे खूब,
सहसा इस देवी को लख कर गये सभी चिन्ता में डूब।

(२६)

बली बहादुर ख़ाँ से फिर,
बोली कर के ऊंचा सिर,
"ख़ाँ साहब ! शाबास ! खूब ही बहादुरी दिखलाई आज,
बालक से घोड़ा छिनवा कर तुम्हें न आई होगी लाज !

(२७),

जिस दिलावरी का जौहर,–
दिखलाना था चम्बल पर,
उसे छिपा रक्खा था भग कर, आज दिखा कर किया कमाल,
लेकिन कुशल इसी में अब है दे दो हरण किया जो माल।

(२८)

खाकर बचनों का गोला,

बली बहादुर ख़ाँ बोला,

"नहीं, पराया माल नहीं था, अपना था कर लिया वसूल,

किसी दूसरे की मजाल क्या चीज़ पराई करे क़बूल ।"

(२९)

"ख़ां साहब ! हो भूल रहे,

अपनी कह कर फूल रहे ,

पर, वह वस्तु कदापि आपकी हो सकती है नहीं प्रतीत,

क्योंकि उसे मैं ही भुज बल से चम्बल से लाई हूं जीत ।

(३०)

उसका लेना सहज नहीं,

धोके में रहना न कहीं ,

उसके पीछे ख़ून हज़ारों का बह जायेगा तत्काल,

फिर भी कहती, दे दो उसको नाहक़ खड़ा न करो बवाल ।"

(३१)

ख़ाँ साहब भी दृढ़ रह कर,

कहने लगे क्रोध सह कर,—

"वह घोड़ा मैं कभी न दूंगा चाहे कुछ भी हो अंजाम ,

हां, उसके बदले मैं ख़ाली कर सकता अस्तबल तमाम ।"

(३२)

बहा मान का फिर झरना,—
"मुझे अस्तबल क्या करना,
मैं अपना ही घोड़ा लूंगी, और नहीं कुछ मुझको चाह,"
"अच्छा, उस घोड़े के एवज़ ले लो दौलत रत्न अथाह।"

(३३)

"बातें खूब बनाते हो !
लालच दे बहकाते हो !
अच्छा, मैं सुन चुकी बहुत कुछ अब उत्तर देगी तलवार,
कैसे लेती अपना घोड़ा, निर्णय कर लेगी असि-धार।"

(३४)

झन्‌झन् झंकृत म्यान हुआ,
उत्थित नग्न कृपाण हुआ,
वीर बुँदेलों ने भी तानी अपनी अपनी असि कर नग्न,
संभव था, दरबार उसी क्षण हो जाता बस, रक्त-निमग्न।

(३५)

हाल शाह ने यह देखा,
भौहों पर खींची रेखा,
ठहरो, कह कर पड़े बीच में, रुक सा गया रङ्ग में भङ्ग,
बोले सारन्धा से बानी रानी साहब ! रोको जङ्ग।

(३६)

एक अस्प पर यह तङ्गी,
ले ली हाथ तेग़ नङ्गी,
अच्छा, घोड़ा मिल जायेगा, कर दो मन से दूर मलाल,
लेकिन क़ीमत महँगी होगी इसका पहिले कर लो ख्याल।"

(३७)

"नहीं किसी का ध्यान मुझे,
पड़ी बात की आन मुझे,
उस पर है सर्वस्व समर्पित, छोड़ न सकती अपनी टेक,"
कहा शाह ने "अभी समय है करलो मनमें ज़रा विवेक।

(३८)

जागीरी, मनसबदारी
छिन जायेगी फिर सारी,"
गर्वित हो बोली सारन्धा—"नहीं मुझे इनकी परवाह,"
"और राज्य भी तो जायेगा"—बोले रूखे होकर शाह।

(३९)

"इसका भी न मुझे ग़म है,
मेरे निकट मूल्य कम है,"
कहा शाह ने—"क्या वह घोड़ा सचमुच है ऐसा अनमोल,
जिसे राज्य, जागीरी, मनसब मिल कर भी कर सके न तोल।"

(४०)

बोली वह तत्काल वहीं,
"है घोड़े पर बात नहीं,
वह अमूल्य है वस्तु औरही वीर मानवों की है जान,
जिसके सन्मुख प्राण न कुछ है वह है आन आत्म-अभिमान।"

(४१)

अभिमानिनि का सुन उत्तर
झक से रहे शाह क्षण भर,
थे चम्पत भी वहीं उपस्थित, फिरकर उनकी ओर निहार,
कहा शाह ने "हित अनहित को तुम्हीं सोच लो कुछ सरदार।

(४२)

दूर हटेगा सुख तुमसे,
भेंट करेगा दुख तुमसे,
अब भी समझा दो रानी को जिसमें हो न खड़ा उत्पात,
न कुछ बात के ऊपर नाहक़ मार रहीं जो सुख पर लात।"

(४३)

बोला चम्पतराय तभी,
"है यह चेष्टा व्यर्थ सभी,
प्रश्न मान का हुआ उपस्थित और न्याय के है अनुकूल;
समझाता तो तब मैं उसको जब वह कोई करती भूल।

(४४)

मैं भी उससे सहमत हूं,
सब सहने को उद्यत हूं,
अस्तु, शाह ने सब विधि देखा बेढंगा अवसर अत्यन्त,
मनमें कुढ़ते हुए सती को घोड़ा दिलवा दिया तुरन्त।

(४५)

रख कर आन शान अपनी,
कर ली तेग़ म्यान अपनी, ।
प्रमुदित होकर दम्पति लौटे, और तयारी कर तत्काल,
जागीरी पर पदाघात कर पहुंचे एरछ गढ़ में हाल।

(४६)

खुला प्रवाह बंधे जल का,
शिर का बोझ हुआ हलका।
हुआ दासता के अभिनय का यद्यपि पूरा अन्तिम सीन,
पर, प्यारी स्वतंत्रता ने हा! सुख को लिया सदा को छीन।

(४७)

विज्ञ-वाचको! गर्व करो,
सम्प्रति तो आनन्द भरो,
वीराङ्गणा सती को देलो धन्यवाद का विमल प्रसाद,
प्रस्तुत हृदय करो लेने को अब दुखान्त अभिनय का स्वाद।

पञ्चम सर्ग
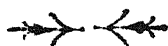
(१)

ग्रीष्म-लपट को झपट बदन पर झेल झेल कर।
प्रखर-ताप के साथ प्रकृति-वश खेल खेल कर।
हुए जगज्जन क्लान्त, अन्त में उसे ठेल कर।
जुड़ा रहे हैं हृदय चन्द्र के सङ्ग मेल कर।

शान्ति-दायिनी वर उषा लेकर सबको गोद में;
प्रकृति-सहचरी के सहित भरी हुई है मोद में॥

(२)

प्राणनाथ का प्रेम प्रिया को परस रहा है।
सरस-सुधा हो भू-मण्डल पर बरस रहा है।
पर, वियोग का भाव बदन पर दरस रहा है।
उधर, अरुण भी उप-प्रेमी बन तरस रहा है।

बाल-वेष रख कर-निकर रहा भेंटने को बढ़ा;
सती सलज्जा हो छिपी, तब रवि को तामस च्ढ़ा॥

(३)

इसका बदला लगा महीं के साथ चुकाने।
क्रोधित होकर भीष्म रूप क्रमशः दिखलाने।
पर, धनियों से लगा स्वयं ही जब शरमाने।
तब दीनों पर लगा छोड़ने असह्-निशाने।
तीक्ष्ण लूह के सहित यों लगा मचाने खलबली;
क्रोधी नृप के राज्य में ज्यों अनीति फूली फली॥

(४)

नीति यही औरंगज़ेब के हृदय समाई।
छुट्टी उसने घरू--बखेड़ों से जब पाई।
तब चम्पत की याद उसे सहसा हो आई।
करने को मद-चूर्ण पूर्णतः शक्ति चलाई।
चम्पत के कुछ बन्धु भी कौशल से वश में किये;
तुमुल सैन्य के साथ फिर भेज समर के हित दिये॥

(५)

परछ अब तक इधर रहा आनन्द मनाता।
मुक्त-कंठ से राग सरस रितुपति का गाता।
पाकर अपना भूप, रूप गौरव दरशाता।
सारन्धा की शक्ति, कीर्ति का ध्वजा उड़ाता।
दम्पति के हृत्कमल थे, खिले प्रेम रस में पगे;
भीष्मा--ग्रीष्मा के गरम तब आकर झोंके लगे॥

(६)

भङ्ग हुआ रस-रङ्ग चित्त में चिन्ता छाई।
गुप्तचरों से ख़बर सभी चम्पत ने पाई।
करने को आक्रान्त शाह की सेना आई।
हैं जिसमें अधिकांश सम्मिलित अपने भाई।
दूर हुआ सुख-स्वप्न तब, सहसा सोते से जगा;
सारन्धा के पास जा सकल कथा कहने लगा॥

(७)

"प्रिये! आज फिर वक्र-काल का चक्र चला है।
लेने पर तुल गया शाह हय का बदला है।
सैन्य—रूप में भेजी भारी एक बला है।
सेना-नायक-कर्ण वही जो यहीं पला है।
बचपन का साथी, सुहृद, खेला खाया साथ में;
भुला सकल सम्बन्ध हा! बिका शत्रु के हाथ में॥

(८)

यही नहीं, हो रहे और भी बन्धु विमुख हैं।
हमसे मिलते रहे सदाही जिनको सुख हैं।
बुन्देलों ने लालच-वश हो पलटे रुख हैं।
क्षत्रियत्व खोकर निलज्ज दिखलाते मुख हैं।
लड़ने आये बन्धु से भूले गौरव मान हैं;
मिले शत्रु के साथ ये क्षत्रिय या शैतान हैं॥

(९)

सारन्धा ने कहा "समय का सब प्रभाव है।
लगा रहा जो हाय ! घाव पर और घाव है।
हैं भारत के कु-दिन न आपस में बनाव है।
चरों दिशि जम रहा फूट का ही जमाव है।
रोपा था जयचन्द्र ने जिसका बीज अकाल में;
फूल फल रहे हैं कु-फल साल साल उस डाल में॥

(१०)

किस कु-घड़ी में हा ! अकबर ने जाल बिछाया।
स्वार्थ-सिद्धि के लिए हिन्दुओं को अपनाया।
भेद्-नीति पर से दिखावटी वस्त्र हटाया।
जाकर जिसकी पड़ी भीरु-हृदयों पर छाया।
मान आदि अभिमान खो, सम्बन्धी पद पर डटे;
जिनके कारण शीघ्र ही आर्य्य जाति के पर कटे॥

(११)

हिन्दू-प्रिय वे शाह बन गये, यद्यपि माटी।
पर, प्रचलित हो गई दास्य-पद की परिपाटी।
अब तक वह शृङ्खला नहीं कटती है काटी।
कुलटा कामिनि यथा नहीं डटती है डाटी।
हा ! भारत के भाग्य में, जाने है क्या क्या बदा;
अभी भुगतना शेष है कौन कौन सी आपदा॥

(१२)

यशोवन्त जयसिंह शाह के काम न आते ।
तो क्या अपना राज्य भवन विस्तृत कर पाते ।
है महान् आश्चर्य आर्य्य-कुल मान गंवाते ।
अपने हाथों से स्व-बन्धु का नाश कराते ।
यही दशा कुछ दिन रही, तो वह कु-घड़ी आयगी ;
भारत-माता रोयगी, आर्य्य-कीर्ति बह जायगी ॥

(१३)

जो हो, अब है व्यर्थ ध्यान भावी का धरना ।
आगे आया काम उसे है पूरा करना ।
आई जो गुरु-सैन्य, नहीं है उससे डरना ।
पारावार अपार बाहु-बल से है तरना ।
प्राणनाथ! चिन्ता तजो, साहस का सज साज लो;
हरण करो मद शाह का, भारत की रख लाज लो ॥"

(१४)

रानी के सुन बचन भूप ने सोच विसारा ।
नव-स्फूर्ति युत दौड़ गई बिजली की धारा ।
सज कर रण का वेश हाथ ले नग्न-दुधारा ।
एकत्रित कर सैन्य, सैनिकों को ललकारा ।
"वीरो ! क्षत्रिय-वंश की, लाज तुम्हारे हाथ है;
परिचय दे वीरत्व का, ऊंचा करना माथ है ॥

(१५)

बड़ी सैन्य को देख, न मनमें दहलाना है।
उन स्यारों को सीख सदा को सिखलाना है।
हर कर रिपु का गर्व विजय--ध्वज फहराना है।
जय भारत की तान मुक्त--स्वर से गाना है।
बढ़ो बढ़ो भाई बढ़ो! चलो समर में अब डटें;
रटें आत्म—सम्मान को, पैर न पीछे को हटें।"

(१६)

पड़े तेग़ पर हाथ वीर-रस प्रकटा दल में।
'जय भारत की' गूंज उठी तब नभ-मंडल में।
सैनिक भर कर रोष डट गये समर-स्थल में।
हुई सकल—रणभूमि रक्त से रञ्जित पल में।
आज देखने योग्य थी चम्पत की बल-वीरता;
जिसे देख रिपु-सैन्य की छूट रही थी धीरता॥

(१७)

वर बुन्देले वीर प्राण का दाँव लगा कर।
खेल रहे थे रण-चौसर सब भीति भगा कर।
पौबारह पड़ गये वीर चम्पत के आकर।
गये कर्ण के कर्ण तीन काने को पाकर।
युग फूटा गोटें पिटीं, शाह-सैन्य विचलित हुई;
बुन्देलों के विजय की कीर्ति-कथा प्रचलित हुई॥

(१८)

जय चम्पत को मिली, शाह का दर्प घटाया।
पर, इस जय ने साथ विभव का हाय! छुटाया।
चुने हुए वर-वीर हो गये सभी सफाया।
शक्ति छिन्न हो गई डिग गया बल का पाया।
नव—विपत्ति का आगमन, आकर्षित करने लगा;
विजयी चम्पत का हृदय, चिन्ता में भरने लगा॥

(१९)

पाया फिर सम्वाद, शाह को रोष बढ़ा है।
दाँत पीसता प्रतिहिंसा से हृदय मढ़ा है।
अबकी भेजी बहुत बड़ी उसने सेना है।
सहित राज्य के इष्ट उसे जीवन लेना है।
रानी पर भी है नज़र कुशल दीखती अब नहीं;
साथी भी विचलित हुए, है बचने का ढब नहीं॥

(२०)

तब रानी के साथ मंत्रणा हुई विलक्षण।
उसमें निश्चित हुआ छोड़ना दुर्ग उसी क्षण।
अस्तु, शीघ्रही आयोजन समुचित सारा।
सपरिवार नृप सघन विपिन की ओर सिधारा।
शेष बचे वर-वीर भी, चले साथ में भूप के;
ज्ञात हुआ—है कुछ अभी शक्ति हाथ में भूप के॥

(२१)

दुर्गम—पथ के पथिक आज हैं हा! बुन्देले।
स्वतंत्रता के लिए जिन्होंने संकट झेले।
सोच रहा है राह-गीर चम्पत मनही मन।
दिल्ली का ऐश्वर्य्य, भाग्य का फिर परिवर्तन।
हा स्वतंत्रते! कुहुकिनी, तेरी लीला है अगम;
पूर्ति न तेरी हो सके, विकट समस्या है विषम॥

(२२)

"रानी! अपनी स्वतंत्रता की देखी माया।
सभी ओर से घिरी संकटों की है छाया।
अपना प्यारा क़िला हो रहा आज पराया।
उसके बदले मार्ग कँटीला दुर्गम पाया।
भटक रहे निष्प्रभ हुए, पैरों में छाले पड़े;
क्षण २ चिन्ता कुशल की प्राणों के लाले पड़े॥"

(२३)

"यह क्या कहते नाथ? चित्त ऐसा है चंचल।
है स्वतंत्रता-मेरी ही,—मेरी ही केवल।
कुछ उस पर अधिकार आपका नहीं रहा है।
यह अनुचित आक्षेप न जाता अधिक सहा है।
मेरा मत है इन सकल कष्टों का कारण यही;
जो स्वतंत्रता देवि को, भक्ति अधुरी ही रही॥

(२४)

होती यदि भरपूर भक्ति तो शक्ति न जाती ।
आती दौड़ी देवि हृदय को सदा जुड़ाती ।
रखते हरदम ध्यान कभी मन से न भूलते ।
और बने निश्चिन्त रङ्ग-झूले न झूलते ।
तो कदापि पड़ता नहीं, सिर पर यह संकट नया;
पर अब कहना व्यर्थ है, होना था सो हो गया ॥

(२५)

अब जो आया समय उसी की करो व्यवस्था ।
धीरज मनमें धरो, न विचलित करो अवस्था ।
यह संकट भी ईश किसी दिन दूर करेगा ।
फिर देगा सुख शौर्य्य, वही आनन्द भरेगा ।
दैव कसौटी कस रहा, चिन्ता सोच विसारिए;
निखरेगा सोना कभी, हिम्मत को मत हारिए ॥

(२६)

घबराते क्यों आप साथ में जब है दासी ।
काटूँगी मैं कष्ट रहो मुझ पर विश्वासी ।
जहाँ पसीना गिरे, ख़ून की धार बहाऊं ।
लेकर कर में शस्त्र शत्रु को मार भगाऊं ।
गिरि-खोहें ही हैं क़िला, विटप-वृन्द प्रासाद हैं ;
रूखे सूखे फल मुझे, सचमुच महाप्रसाद हैं ॥"

(२७)

अस्तु, व्यवस्था हुई, गुफ़ाओं में सब ठहरे।
कुछ चारों दिशि लगे सजग हो देने पहरे।
शाही सैनिक उधर क़िले में घुसे निडर हो।
मौज लूट में डटे, इन्हीं का जैसे घर हो।
दम्पति को खोजा बहुत, सब उद्यम कर के थके;
व्यग्र हुए उनके लिए, पर, न पता जब पा सके॥

(२८)

गुप्त-चरों को त्वरित ख़बर लेने पहुँचाया।
आये फिर वे लौट पता भी सब बतलाया।
सघन विपिन की ओर शाह की सैन्य बढ़ी तब।
आँधी सी झुक पड़ी गगन में धूलि मढ़ी तब।
घेरा चारों तरफ़ से, जगह न भगने की रही;
पहरेदारों ने ख़बर, चम्पत से जाकर कही॥

(२९)

बढ़ा हृदय में रोष, दृगों में दौड़ी लाली।
चुनी हुई निज सैन्य समर के लिये सजाली।
उत्तेजित कर वर-वीरों को लिये साथ में,
मार मार कह बढ़ा, गहे तलवार हाथ में।
सारन्धा ने भी त्वरित, वीर-वेष धारण किया;
रण-चण्डी की मूर्त्ति बन, साथ प्राण-पति का दिया॥

(३०)

जाती थी जिस ओर निकल बिजली सी बाला।
बहने लगता उधर रुधिर का भीषण नाला।
ज्योतिमयी तलवार उगलती थी बस ज्वाला।
शिव-त्रिशूल सा बना हुआ था उसका भाला।
बस देवी के तेज से, झुलस गया रिपु-पक्ष यों;
रवि से अड़ने में जले, सम्पाती के पक्ष ज्यों॥

(३१)

दिखलाते थे वीर करों के ख़ूब सपाटे।
शस्त्रों ने भरपूर रक्त रिपुओं के चाटे।
हटी पराजित शाह-शैन्य डटसकी न डाटें।
सेनापति ने बहुत होंठ दांतों से काटे।
सब प्रयत्न निष्फल हुए, विचलित सैन्य न फिर मुड़ी;
गिरि-शृंगों पर जय-ध्वजा, सती-शौर्य्य-सूचक उड़ी॥

(३२)

कई बार मुठभेड़ हुई फिर तीन वर्ष तक।
शाही सैन्याध्यक्ष समर से खूब गये छक।
वन-वीरों की देख वीरता रहे सभी ज़क।
हतोत्साह हो हृदय आपही आप गये पक।
समाचार नैराश्य के, शाह-निकट भेजे सभी
कूट-नीति के सिन्धु से, नई लहर निकली तभी॥

(३३)

उससे प्रकटित हुआ एक निष्कर्ष निराला।
ख़ाली करदो क़िला, हटा लो सभी रिसाला।
बहुत शीघ्र ही किया गया फिर पालन इसका।
एकबारगी क़िला छोड़ शाही-दल खिसका।
देख स्वयंही शीश से, संकट के बादल हटे;
बुन्देले निश्चिन्त हो, फिर गढ़ में आकर डटे॥

(३४)

हुआ न कुछ भी ध्यान कूट-कौशल का उनको।
वक्र-नीति-प्रिय प्रवञ्चकों के छलका उनको।
गये ऐश में डूब खुशी सब लगे मनाने।
नाच रङ्ग में पगे बने पूरे मस्ताने।
हा! यह भोग विलास ही, सब अनर्थ का मूल है;
वीर क्षत्रियों के लिए तो सचमुच यह शूल है॥

(३५)

पहिले तो सुख-स्रोत उमड़ कर शीतल करता।
पर पीछे से प्रकट विकट बड़वानल करता।
होता सहसा वार सम्हल मुश्किल से पाते।
ऐश रङ्ग के मजे तभी आगे आ जाते।
वीर, भूप, क्षत्रिय, यवन, जो इसमें पूरे पगे,
आख़र वे म्रियमाण हो, ठीक ठिकाने ही लगे॥

(३६)

चम्पत ने भी आगे की चिन्ता को छोड़ा।
सैन्य आदि के लिए उचित सामान न जोड़ा।
अन्न-कोष का संग्रह भी कर पूर्ण न पाया।
और शीघ्रही चौमासा सिर पर मँडराया।
ज्यों त्यों करके कट गये, कई महीने मोद से;
अन्तिम आभा की छटा, निकली सुख की गोद से॥

(३७)

इधर उखाड़ा वर्षा के मेघों ने डेरा।
उधर क़िला भी सघन सैन्य ने आकर घेरा।
दीख न पड़ता छोर दूर तक सैनिक छाये।
रिपुओं ने हर ओर मोरचे विकट लगाये।
बंद एकदम दुर्ग का, आना जाना हो गया;
दृढ़ फाटक भी तोप का, कोप-निशाना हो गया॥

(३८)

मुट्ठी भर वरवीर धीर धर सके न मन में।
विवश-सिंह फँस गये स्वयं दृढ़तर बन्धन में।
प्राचीरों से तोप चलाते थे पल पल में।
पर उसका कुछ असर न होता था रिपु-दल में।
क्रमशः यह सामान भी जब चुकने पर आ गया;
बुन्देलों के हृदय में, भयनैराश्य समा गया॥

(३९)

चम्पत का सौभाग्य-सूर्य्य निज तेज गँवाकर।
अस्ताचल के निकट शीघ्र ही पहुंचा जाकर।
भीषण ज्वर ने किया अचानक फेरा आकर।
होकर संज्ञा-हीन पड़ गया दुख-शय्या पर।
सारन्धा करने लगी, सेवा तन मन से बड़ी;
विविध प्रयत्नों से मिली तभी चेतना की घड़ी॥

(४०)

"हा! सारन्! सर्व्वान्त भाग्य में यही बदा है!
किन जन्मों का पाप शीश पर हाय लदा है?
पड़ा हुआ निश्चेष्ट शक्ति भी लुप्त हुई है।
थमनी प्रायः रक्त-वाहिनी सुप्त हुई है।
वैरी घेरे हैं क़िला, प्रजा पड़ी है पर-वशा!
इसी समय में दैव को, करना थी ऐसी दशा!

(४१)

मिट जाता अरमान समर में यदि हत होता।
जन्मभूमि के लिये शान्ति सुख से तो सोता।
हा! अब क्या हो!" अधिक और कह सका न कुछ फिर।
ज्वर का बढ़ा प्रकोप मूर्छना सी आई घिर।
विज्ञ वैद्य ने दे दवा, मूर्छा का उपशम किया;
करने लगा प्रलाप फिर, हा! अब क्या होगा प्रिया!

(४२)

रक्खे हुए स-प्रेम गोद में पति का कन्धा।
हृदय मसोसे हुए रो रही थी सारन्धा।
धीरज धर कर स्वयं लगी पति को समझाने।
"प्राणनाथ! इस भाँति आप क्यों हैं घबराने?
जिसने यह संकट दिया, वही तरस भी खायगा;
दुखनाशक ईश्वर कभी, सुख के दिवस दिखायगा॥"

(४३)

"है सुख स्वप्न समान ध्यान अब धरो न उसका।
वह भी रिपु से मिला, आसरा करो न उसका।
आते हैं जब कुदिन प्रिये! तब प्रति पग पग में।
बिछे हुए मृदु फूल शूल बनते हैं मग में।
ईश्वर भी चुप बैठता, बनता बधिर समान है;
चलता आता विश्व में, विधि का यही विधान है॥"

(४४)

"जीवनधन! विधि के विधान को भरना होगा।
इस दुख-नद को किसी तरह से तरना होगा।
प्राण बचें वह यत्न शीघ्र ही करना होगा।
सोच-निराशा अब न हृदय में धरना होगा।
मेरी छोटी बुद्धि में, जँचता यही विचार है;
गुप्त मार्ग से निकल कर, प्राण बचाना सार है॥"

(४५)

"सारन ! यह क्या कहा ?—भाग कर प्राण बचाऊं !
अपनी प्यारी प्रजा शत्रु को सौंपे जाऊं !
सुहृद कुटुम्बी वृन्द यहां पर संकट झेलें !
वीरोचित अभिमान हेतु प्राणों पर खेलें !
और भगूँ मैं साथ तज, तुच्छ प्राण का मोह कर;
इस कलंक की कालिमा, मिट न सकेगी जन्म भर।"

(४६)

सारन्धा ने कहा "नाथ ! सच है यह कहना।
किन्तु, असम्भव अब प्रतीत होता प्रण रहना।
क्योंकि आपकी देह शीर्ण गुरु-रोग ग्रस्त है।
हाय ! इसी को सोच हृदय हो रहा त्रस्त है ।।
यहीं रहें तो भी प्रजा, दुख से त्राण न पायगी;
हा ! हम सब के साथ ही, वह भी पीसी जायगी ।।

(४७)

हृदयेश्वर ! अतएव, टेक मत मन में धरिए।
जिस रुख पर हो हवा आड़ भी वैसी करिए।
सोचो, रह कर यहाँ प्रजा क्या बचा सकोगे ?
शक्ति रहित हैं हाथ, तेग़ क्या नचा सकोगे ?
मानी चम्पत ने कहा—"शक्ति रहित हैं हाथ तो—
सब से पहिले प्राण दे, दूंगा सब का साथ तो ।।

अर्चन करके लौट रही थी, इसी काल में—
आया अचानक एक श्वानकर गिरा थाल में।

पृ० ५५

(४८)

जब तक यह विश्वास न मुझको हो जायगा ।
मेरे पीछे दुख न प्रजागण पर छायगा ॥
वंश-लाज मर्य्याद रमणियों की न घटेगी ।
तब तक मेरी टेक हृदय से नहीं हटेगी ।"
कहा सती ने—"नाथ अब अधिक न करिये दिल दुखी ;
कर के अभी प्रयत्न यह, प्रभु को करती हूं सुखी ॥"

(४९)

छत्रसाल के पास शीघ्र ही आई रानी ।
फेर शीश पर हाथ प्रेम से बोली बानी ।
"बेटा ! आया कठिन परीक्षा का अवसर है ।
पूज्य-पिता का जीवन, बस, निर्भर तुम पर है ।
शाही सैन्याध्यक्ष से, लिपि कर लो यह हाथ में ;
होगा अत्याचार कुछ नहीं प्रजा के साथ में ॥

(५०)

स्वयं विज्ञ हो, व्यर्थ तुम्हें है कुछ समझाना ।
कौशल, विद्या, बुद्धि, ज्ञान से काम चलाना ।
रहे हृदय में सदा पिता का प्राण बचाना ।
बस, अब जाओ शीघ्र पहिन कर चर का बाना ।"
माता के छूकर चरण, क्षत्रसाल तब चल दिया ;
सेनापति को शीघ्रही, बातों से वश में किया ॥

(५१)

इधर सजा कर पूजन की सामग्री सारी।
सारन्धा भी हरि-मन्दिर की ओर सिधारी।
अर्चन कर के लौट रही थी, उसी काल में।
बाण अचानक एक आन कर गिरा थाल में।
काग़ज़ उस की नोक में, बँधा हुआ अविलोक कर;
लगी खोलने आप ही, सहचरियों को रोक कर॥

(५२)

सेनापति का पत्र मुहरयुत उस को पाया।
छत्रसाल ने जिसे बाण से था पहुंचाया।
सुत पर हो सन्तुष्ट लौट निज घर को आई।
प्राणनाथ के पास पहुंच सब कथा सुनाई।
और पत्र भी हाथ में, चम्पत के वह दे दिया;
समझा कर फिर रात्रि में, चलने का आग्रह किया॥

(५३)

"बुद्धि तुम्हारी धन्य, खूबही काम किया है।
इसके बदले किन्तु कहो क्या मूल्य दिया है?"
"यह मत पूछो नाथ! रत्न ही गया हाथ से।
छत्रसाल सा पुत्र पृथक हो गया साथ से।"
"हा सारन! यह क्या किया, थकित हुई आशा सभी;
छत्रसाल! बेटा, तुझे, फिर क्या देखूँगा कभी॥"

(५४)

अपना घूँसा एक मार कर वक्षस्थल पर।
चम्पत फिर बेहोश हो गया हाय-हाय कर।
फिर औषधि दी गई चेतना जिससे आई।
सारन्धा ने हाथ जोड़ कर विनय सुनाई।
"होना था सो हो गया, रक्षक सुत का राम है;
नाथ ! चलो अब हठ तजो, नहीं देर का काम है॥

(५५)

"सारन ! हठ कर रहीं खूब मजबूर बनाया,
अच्छा, कहना और एक कर दो मनभाया।
पुरजन, परिकर, बन्धु, सुहृद, सैनिक जन प्यारे।
अन्तिम दर्शन हेतु उपस्थित कर दो, सारे।
क्षमा करालूं दोष निज, एक वार फिर भेंट लूं,
लगी हुई है लालसा, यह भी मनकी!मेट लूं॥"

(५६)

सुनते ही यह ख़बर, सभी जन दौड़े आये।
सबको करुणाजनक भूप ने शब्द सुनाये।
"प्रिय जन ! होता विदा तुम्हारा सेवक सबसे।
प्रजातंत्र ही राज्य समझना इसको अबसे।
चाहे जैसे राखियो, बुन्देलों के मान को;
धरते रहना नित्यही, जन्म-भूमि के ध्यान को॥

(५७)

है सबका कर्त्तव्य देश का संकट हरना।
मनुज मात्र का धर्म मातृ-सेवा-हित मरना।
अधिक कहूं क्या हाय ! शक्ति हो क्षीण चली है।
दीख रही बस, स्वर्ग धाम की स्वच्छ गली है।
दैवेच्छा बलवान है, चलता कुछ चारा नहीं;
हाय ! हौसला रह गया, दुश्मन को मारा नहीं॥

(५८)

प्रार्थी हूं अपराध क्षमा मेरे सब करना।
सेवा में त्रुटि रही, उसे मत मनमें धरना।
आज्ञा दोगे सभी, तभी मैं गमन करूंगा।
बिना मिले आदेश, न जाऊं, यहीं मरूंगा।"
अधिक न फिर कुछ कह सके, लगी आँसुओं की झड़ी;
रुंध आया नृप का गला, व्याकुलता छाई बड़ी॥

(५९)

उधर लगे शिशु, युवक, वृद्ध, वनिता सब रोने।
क्रन्दन कर कर नृप-वियोग में धीरज खोने।
दुख करुणा की नदी उमड़ करके घिर आई।
महलों में हर ओर उदासी सी तब छाई।
दुर्गम-पथ में भटक कर अटक लेखनी अब थकी;
इस करुणात्मक दृश्य का अधिक न परिचय दे सकी॥

षष्ठम सर्ग
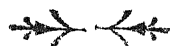
(१)

नीरव नभ-मंडल है, घन में छिपे पड़े हैं तारे,
मन-मारे विश्राम कर रहे दिन-नायक के प्यारे ।
सूझ न पड़ता पन्थ, किनारे प्रहरी विटप खड़े हैं,
हो कर तब भी निडर क्रूर ठग कामी निकल पड़े हैं ।

(२)

काली, करालिनी रजनी ने आश्रय उन्हें दिया है,
अपने सघन नील-अंचल में उनको छिपा लिया है ।
इधर निराश्रित दुखित, विकल हो निशि को कोस रहे हैं,
कर कर के विधि की विडम्बना हृदय मसोस रहे हैं ।

(३)

लूट लूट कर द्रव्य एक जन महलों में सोते हैं,
और एक जन तरु के नीचे बैठे दुख रोते हैं ।
खाकर मोहन भोग एक जन बने भोग के भागी,
मुट्ठी भर भी चने न पाते हाय ! एक हत-भागी ।

(४)

एक श्रीमती लगा मसहरी मख़मल पर सोती हैं,
आधा वस्त्र चोथड़ों से ढक एक रात्रि खोती हैं ।
सन्तानों पर प्यार कर रही एक मोद मन धारे,
भार-रूप हो रहे एक को फेंक रही सुत प्यारे ।

(५)

एक ओर नव-दम्पति-जोड़ी सुख को लूट रही है,
एक वृद्ध के बँधी गले से छाती कूट रही है ।
छोटे पति को देख षोड़शी एक न धीरज धरती,
विधवा एक देख निशि-नागिनि भय की साँसें भरती ।

(६)

बन कर हाकिम एक हकूमत अपनी चला रहे हैं,
अपने ही भाई के दिल को दुख से जला रहे हैं ।
कोई कपटी साधु महन्तो का पहिने हैं बाना,
हरिकीर्तन मिस कुल-वन्धुओं का चाहें धर्म डिगाना ।

(७)

एक ओर निज तोंद फुलाये सेठ मौज करते हैं,
वार वधू के रूप-दीप पर हो पतंग मरते हैं ।
सुकवि, सुलेखक उनकी मति पर निज सिर पटक रहे हैं,
चम्पक प्रेमी बने भ्रमर वे भ्रम में भटक रहे हैं ।

(८)

चाटुकार हो एक थैलियों में धन जोड़ रहे हैं,
एक ज़ुल्म में फँसे जेल में मस्तक फोड़ रहे हैं।
असम समस्याओं की भारी मची हुई हलचल है,
सूचक है—होने वाली अब जग में उथल-पुथल है।

(९)

उधर देश-द्रोही शिविरों में सुन सङ्गीत रहे हैं,
देशभक्त चम्पत के पल पल युगसम बीत रहे हैं।
गुप्त-मार्ग से उसकी डोली गढ़ के बाहर आई,
अन्धकार में छिपी, न सहसा देती थी दिखलाई।

(१०)

वीर, साहसीवाहक पथ में द्रुत-गति से पद धरते,
काँटे, पत्थर, जीव, जन्तु की कुछ परवाह न करते।
थे कर्त्तव्य समझते अपने प्रभु की रक्षा करना
नहीं पढ़ा था पाठ उन्हों ने कभी विघ्न से डरना।

(११)

सारन्धा भी साथ चली यों देती हुई सहारा,
शोभित होती घन-मंडल में ज्यों बिजली की धारा।
बारम्बार याद करती है घटना आज पुरानी,
पूरी हुई शीतला की क्या वह भविष्यमय वाणी?

(१२)

कँप उठता है हृदय सिहर कर व्याकुलता बढ़ जाती,
किन्तु, उपस्थित समय देख कर दृढ़ कर लेती छाती।
धीरज धर कर, क्षण क्षण निशि की ओर नज़र करती है;
होगा शीघ्र प्रभात इसी की चिन्ता भय भरती है।

(१३)

प्रकृति-नियम है कड़ा किसी पर दया नहीं लाता है,
करने को कर्त्तव्य-पूर्ण वह यथासमय आता है।
हटने लगा प्रभाव निशा का, हुई उषा की बारी,
प्राभातिक प्रकाश ने नभ में छिटकाई छबि प्यारी।

(१४)

सारन्धा ने आहट पाकर पीछे फिर कर देखा,
एकबार ही माथा ठनका खिची भीति की रेखा।
धूलि-राशि से घिरी आ रही एक घटा सी गहरी,
वृत्त जानने को चम्पत की डोली सहसा ठहरी।

(१५)

क्रमशः आने लगा पास ही वह तूफ़ान निराला,
वीर-वाहकों ने तब अपना रण का वेश सम्हाला।
करने को गति रुद्ध शीघ्र ही पहुंचे सम्मुख जाकर,
धूलि हटी, शाही सवार तब पड़े नज़र में आकर।

(१६)

चम्पत के वीरों ने अपने रिपुओं को पहिचाना,
मार्ग रोक कर डटे समर का, कठिन कर दिया आना ।
प्रभु के प्राण बचाने के हित हुए सभी उत्साहित,
बुन्देलों का रक्त बदन में होने लगा प्रवाहित ।

(१७)

स्वामि-अन्न से उऋण हो रहे प्राणा की वलि देकर,
मरते थे स्वर्गीय-सौख्य का अनुभव रण में लेकर ।
इन वीरों का देख पराक्रम रिपु सैनिक चकराने,
चौकन्ने होकर दाँतों में अँगुली लगे दबाने ।

(१८)

पर, दल पाँच इधर वाहक थे, उधर सैन्य थी भारी,
किसके किसके वार बचावें बुन्देले बल-धारी ।
संज्ञा में आकर चम्पत ने परदा शीघ्र हटाया,
दृश्य देख कर सर्वनाश का आँखों में जल छाया ।

(१६)

सेवा करती हुई पास ही थी सारन्धा नारी,
आह खींच कर बोला, "देखो विधि का कौशल प्यारी !
विविध यातनायें देकर भी तरस न उसको आया,
सर्वनाश ही करने का है बीड़ा उसने खाया !

(२०)

अच्छा है, कर लेने दो उस निर्दय को मनमानी,
होना तुम न अधीर, कोसना मत बूढ़े को रानी।
क्योंकि तुम्हारे सत्य, श्राप से त्राण न वह पावेगा,
होगा व्यर्थ-विधान देव का आसन डिग जावेगा।

(२१)

नहीं, नहीं, मैं भूल कर रहा, विधि का दोष न कुछ है,
अब मुझको सन्तोष हो गया, उस पर रोष न कुछ है।
अपनी अपनी करणी ही का मिलता सबको फल है,
जैसा पड़ता बीज वृक्ष भी फलता वैसे फल है।

(२२)

वे देखो, स्वदेश के सेवक माँ के लाल बुँदेले,
धन्य धन्य है पर-सेवा हित जो प्राणों पर खेले।
इसी भाँति यदि सभी वीर वर अपनी शक्ति दिखाते,
तो भारत के लिये बुरे दिन कभी नहीं आ पाते।

(२३)

हाय! एक वे हैं निलज्ज जो रिपु से मेल बढ़ाते,
निज भ्राताओं की गर्दन पर मिल कर छुरी चलाते।
घरू-घातकों की कृतियों ने बेलि फूट की बोई,
भारत को परतंत्र बना कर लुटिया हाय! डुबोई।

(२४)

सूझ न पड़ता अभी हृदय को तम ने घेर लिया है,
हाय! ग़ुलामी के लालच ने उनको ज़ेर किया है।
निकलेगा परिणाम भयंकर हो हतबुद्धि गिरेंगे,
भावी सन्तानों के सिर पर दुख के मेघ घिरेंगे!

(२५)

हा! वह देखो, गिरा और भी सैनिक एक हमारा,
अब बचने का नहीं दीखता प्यारी मुझे सहारा।
लाओ मेरा धनुष यत्न कुछ मैं ही करके देखूँ,
दे जाये कुछ काम कदाचित शर तो धर के देखूँ।

(२६)

हैं! यह क्या? सब भाँति शक्ति ने हाय! हताश किया है,
खींचूँ क्या अब छूने ही में काँपने लगा हिया है।
मेरे वे सब वीर स्वर्ग में पहुंच चुके हैं मरके,
रिपु-सैनिक आ रहे इधर ही निष्कंटक पथ कर के।

(२७)

देख रही थी सारन्धा सब बनी मूर्ति पत्थर की,
हुई विचित्र दशा थी व्यापी चिन्ता इधर उधर की
देख देख दुःस्वप्न नाश का थी मानो बेहाला,
स्वामी के सुन वचन एकदम पड़ी चौंक सी बाला।

(२८)

"जीवन धन! अब सोच व्यर्थ है कठिन समय है आया,
रण की आज्ञा बस मुझको दो, तज कर ममता माया।
समराङ्गण में शस्त्र-परीक्षा अंतिम कर लेने दो,
रिपुओं के घमण्ड के मद को कुछ तो हर लेने दो।

(२९)

देखूँ कैसे शूरवीर हैं, हैं कितने बलधारी,
स्यार-नरों के लिये बहुत है एक सिंहनी-नारी।
प्रभु के चरणों के प्रताप से विचलाऊँगी दल को,
वे भी तो जानें भारत की ललनाओं के बल को।"

(३०)

"हा! सारन! यह अनुचित अनुमति मुझसे पा न सकोगी,
उन दुष्टों के पास अकेली तुम अब जा न सकोगी।
किन आंखों से मैं देखूंगा दृश्य भयङ्कर भारी,
मेरे रहते शत्रु करें क्या दुर्गति हाय! तुम्हारी।"

(३१)

"यह क्या कहते नाथ! बदन पर कौन हाथ धर सकता,
सच्ची वर-सतियों की दुर्गति कब कोई कर सकता!
क्या उनकी सामर्थ्य अग्नि को जो वश में लावेंगे?
पावेंगे तो भस्म भले ही पीछे से पावेंगे।"

(३२)

"यह सब सच है प्रिये! किन्तु मन हाय! न धीरज धरता,
ऐसे समय साथ तजने को है वह वर्जन करता।
बस, अब एक उपाय शेष है, और नहीं कुछ चारा,
तीक्ष्ण-कटारी ही दे सकती अन्तिम समय हमारा।

(३३)

किन्तु हाथ इतने निर्बल हैं उठा न इसको सकते,
वज्र-सदृश थे कभी आसरा हा! अब परका तकते।
अस्तु, प्रिये! अब सोच छोड़कर काम तुम्हीं यह कीजे,
दिया सदा से साथ और भी अब थोड़ा सा दीजे।

(३४)

चिर-संगिनि हो, कभी न टाला तुमने मेरा कहना,
देखो, अब विचलित मत होना, साहस पर दृढ़ रहना।
अन्तकाल की बात पड़ेगी देवी! तुम्हें निभानी,
शीतल कर दो हृदय हमारा दे कटार का पानी।"

(३५)

"हृदयेश्वर! यह कैसी आज्ञा हृदय कँपाने वाली!
वज्र-हृदय है नहीं, किस तरह फिर यह जावे पाली?
हां, यदि तीक्ष्ण कटारी होगी अधिक रुधिर की प्यासी,
तो अपना जीवन कर सकती अर्पण उसको दासी।"

(३६)

"सारन! ऐसा ही अवसर है, सब विधि है लाचारी,
वज्र-हृदय करना ही होगा तुम्हें इस समय प्यारी ।
यदि कुछ भी सचमुच है मुझपर श्रद्धा भक्ति तुम्हारी,
तो मेरी आज्ञा को मानो, ले लो हाथ कटारी ।"

(३७)

"हाय! नाथ! फिर वही बात कह प्राण निकाल रहे हो,
हुए हृदय में घाव नमक को उन पर छिड़क रहे हो!
पतिव्रता पति ही को मारे, फटता हाय! कलेजा,
आज्ञा है यह या रौरव ने मुझे निमंत्रण भेजा!

(३८)

इस गुरुतर पातक को कैसे कर सकते कर मेरे,
एक साथही सब खोटे ग्रह क्या मुझको हैं घेरे ।
हाय! शीतले! शाप तुम्हारा आज सफल क्या होगा,
मनमें मची हुई है हल चल, ईश्वर फल क्या होगा?"

(३९)

"रानी! इस पर ही भरती थीं पति-सेवा की हामी,
दिखलाने ही को कहती थीं मुझको अपना स्वामी ।
काम पड़ा जब तब पीछे को हाय! हटी जाती हो,
यह आज्ञा पालन करने में क्यों अब घबराती हो ।

(४०)

कहां गया वह शौर्य्य और साहस क्या हुआ तुम्हारा,
यही चाहतीं, करे शत्रुही जीवन नष्ट हमारा।
अब तक रहा स्वतंत्र यंत्रणा वही क़ैद की पावे,
मूंछे नीचे झुकें, प्रतिष्ठा वीर वंश की जावे।

(४१)

यह कैसी पति-भक्ति! हाय जब पति का ध्यान न तुमको,
अनुचित उचित समय का अब तक है क्या ज्ञान न तुमको।
यदि पातक हो तो मुझ पर है तुम क्यों उससे डरतीं,
क्योंकि धर्म-हित तुमतो पति की आज्ञा पालन करतीं।

(४२)

देखो सारन! अधिक न सोचो, निकट शत्रु-गण आये,
होग क्षण में सर्वनाश, लो, वे सिर पर मँडराये।
हाय! प्रिये! सब लाज चली, अब कुल का नाम बचाओ,
अभी समय है, करो शीघ्रता, सच्चो भक्ति दिखाओ।"

(४३)

"जीवितेश! क्यों व्याकुल होते, लाज कहीं जा सकती,
वीर वंश की मान-शान पर आँच नहीं आ सकती।
समझ गई उद्देश्य आपका अब न वचन टालूंगी,
हो कुछ भी परिणाम, नाथ की मैं आज्ञा पालूंगी।"

(४४)

जब तक पहुंचे पास शत्रुओं की वह टोली भारी,
तब तक सारन्धा ने खींची बाहर शीघ्र कटारी।
प्राणनाथ के वक्ष-स्थल में उसको पार उतारी,
पति-हत्या में पातिव्रत ने अपनी ज्योति पसारी।

(४५)

सेनापति यह हाल देख कर खड़ा रहा ज़क खाकर,
लगा देखने वीर वधू को शक्तिमयी छबि छाकर।
उस देवी के दिव्य तेज ने निज आतंक जमाया,
जिससे सब रिपुओं के दिल में भारी त्रास समाया।

(४६)

बड़े अदब से सेनापति फिर बोला शीश झुका कर,
रानीसाहब ! बिन दामों का समझो हमको चाकर।
क़सम खुदा की जो कुछ होगा इसदम हुक्म तुम्हारा,
सर आँखों से पूरा करना होगा काम हमारा।

(४७)

सुना बहुत कुछ मगर तजुर्बा अब तक रहा अधूरा,
वीर नारियों के ज़ौहर का पता मिला अब पूरा।
सचमुच भारत की देवी हो, हो पूजा के क़ाबिल,
शाबाशी दे रहा तुम्हें है बारबार मेरा दिल।"

प्राण नाथ ! पति ! मुझे शरण में लेना है हृदयेश्वर;—
कहती हुई गिरी प्रिय पति के चरणों में मृत होकर

पृ० ७[illegible]

(४८)
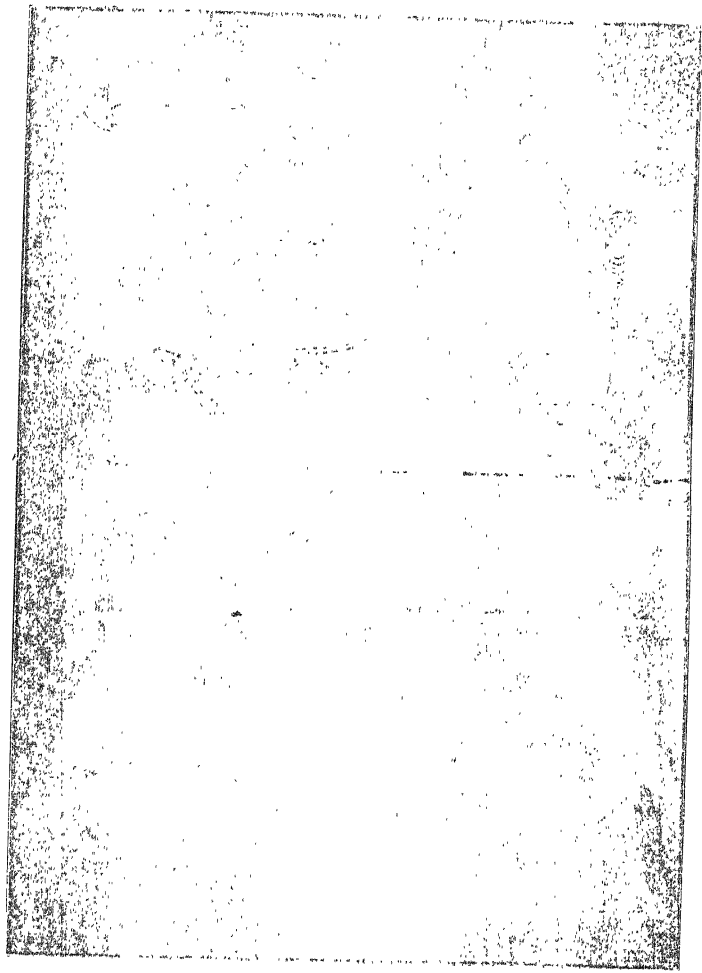
रिपु का यह बर्त्ताव देख कर बोली हँस कर रानी,
"धन्य धन्य ! सरदार तुम्हें है धन्य तुम्हारी बानी !
गुदड़ी के हो लाल, पंक के सचमुच एक कमल हो,
काँटों से परिपूर्ण विटप में तुम गुलाब के दल हो ।

(४९)

और नहीं कुछ अभिलाषा है पास पड़ा है प्यारा,
उचित समझ कर पूरा करना कहना एक हमारा ।
जीवित हों जो पुत्र हमारे उन्हें खोज तुम लेना,
इन दोनों लाशों को जाकर बस उनको दे देना ।

(५०)

और साथ ही कुछ थोड़ा सा संदेशा यह कहना,
बीर सुतो वंशाभिमान की शान बढ़ाते रहना ।
बुन्देलों के भाग्य व्योम में तम ने डेरा डाला,
विमुख विधाता हुआ हर लिया उसने सब उजियाला ।

(५१)

आशा विचलित हुई हृदय की हाय ! न धीरज धरती,
रह रह कर वह बार बार सुत, याद तुम्हारी करती ।
हो सच्चे सपूत तो आशा सफल हृदय की करना,
रवि न बन सको तो दीपक ही बन कर तम को हरना ।

(५२)

जिस स्वतंत्रता की वेदी पर जीवन-सुमन चढ़ा कर,
माता पिता तुम्हारे होते वलि सन्मान बढ़ा कर ।
उचित तुम्हें भी है देवी की मूर्ति हृदय में धरना,
भीरु न बनना, धर्म देश हित हँसते हँसते मरना ।

(५३)

मेरी आत्मा स्वर्ग-सदन में शान्ति नहीं पायेगी,
जन्म-भूमि भारत की उसको याद सदा अयेगी ।
देखेगी टकटकी लगा कर सारे काम तुम्हारे,
बनते हो कायर सपूत, या सच्चे देश दुलारे ।

(५४)

कोख लजाओगे जो मेरी तो न चैन पाओगे,
आह-अग्नि निकलेगी उसमें पड़ कर जल जाओगे,
क्षत्रियत्व का परिचय देकर माँ को प्रमुदित करना,
शीतल होगा हृदय बहेगा यश-शौरभ का झरना,

(५५)

पारस्परिक विरोध विटप ने विषमय फल प्रकटाये,
हुआ उसी का नाश कि जिसने कु-फल फूट के खाये।
प्रिय पुत्रो ! भरसक प्रयत्न कर इनसे बचते रहना,
सुख चाहो तो सभी बन्धु मिल प्रेम-सिन्धु में बहना।"

(५६)

कह कर इतने वचन शीघ्रही लेकर वही कटारी,
अपने वक्षस्थल में उसने बड़े ज़ोर से मारी ।
"प्राणनाथ ! पति ! मुझे शरण में लेना हे हृदयेश्वर"
कहती हुई गिरी प्रिय पति के चरणों में मृत होकर ।

(५७)

शिव की गोदो में देवी सी शोभित हुई सुशीला,
हुई वीर दम्पति की पूरी सारी ऐहिक लीला ।
शुचि स्वर्गीय मिलन का अनुभव आज पा रहे दोनो,
भारत ! तेरे रत्न और मणि, देख, जा रहे दोनो ।

(५८)

घहराये दुख के घन घिर कर हटते नहीं हटाये,
भाग्यहीन बुन्देलखण्ड ने अनुपम रत्न गँवाये ।
कौन सान्त्वना दे अब उसको धीरज कौन बँधाये,
पराधीनता रूपी बेड़ी उसकी कौन हटाये ।

(५९)

परमपिता ! प्रभुवर ! परमेश्वर ! फिर शुभदिन दिखलाओ,
दीन हीन भारत का भगवन् ! भाग्य भानु चमकाओ ।
फिर घर घर में पूर्वकाल सम सतियाँ तेज दिखावें,
कर सच्ची पति-भक्ति शक्तियां सोती हुई जगावें ।

इति ।

पृष्ठ संख्या ५५० मूल्य २॥) रु०

यह उपन्यास क्या है ? ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंगरेजों के भीषण अत्याचारों का जीता जागता चित्र है।

इस पुस्तक के लेखक की लिखी हुई एक पुस्तक 'टाम काका की कुटिया' हिन्दी संसार पढ़ चुका है यह उससे भी बढ़ कर है। लार्ड मेकाले का कहना है:—

"बंगाल में मुसलमानों के जमाने में भी अत्याचार हुआ था, पर ऐसा भीषण अत्याचार कभी नहीं हुआ" इसी भीषण अत्याचार का यह पुस्तक ज्वलन्त उदाहरण है।

पुस्तक का मूल्य बहुत कम रखा गया है।

आज ही पत्र डाल कर मंगा लीजिये।

मैनेजर 'प्रताप पुस्तकालय' कानपुर।

प्रताप पुस्तक माला

[१) रु० प्रवेश फी देकर माला के स्थायी ग्राहक बनने वालों को माला की सभी पुस्तकें पौनी क़ीमत में मिलती रहती हैं ।]